ऋषि प्रसाद

सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

प.पू. संत श्री
आसारामजी महाराज

द्विमासिक वर्ष : १ जुलाई-अगस्त १९९१ अंक : १

आत्मज्ञान की महिमा

एक साधक ने आकर कहा : "बापू! लोगों को अगर आत्मज्ञान की जरूरत नहीं है तो उन्हें जबरदस्ती क्यों देना चाहिए?"

आत्मज्ञान एक ऐसी ऊँचाई है कि वहाँ यह नहीं सोचा जाता की सामनेवाले को इसकी जरूरत है कि नहीं। वह इतना दिव्य अमृत है कि सामनेवाले को जरूरत हो तो भी दो और जरूरत न हो तो उसमें जरूरत जगाकर भी दो ताकि उसका कल्याण हो।

समाज को आत्मज्ञान की जरूरत नहीं है ऐसा कहना सही नहीं है। मनुष्यमात्र को ही नहीं प्राणिमात्र को सुख की जरूरत है। जीवमात्र सुबह से शाम तक सुख के लिए चेष्टा करता है।

शारीरिक कर्मों की समाप्ति, मानसिक कल्पना तथा समझ की पूर्णाहुति, बौद्धिक ऊँचाई की पराकाष्ठा, चित्त के चिन्तन की व्यर्थता तभी समझ में आती है जब मनुष्य को आत्मज्ञान होता है।

वास्तव में जिन चीजों की इतनी जरूरत नहीं है उन चीजों में समाज बहा चला जा रहा है। बहते हुए समाज को देखकर ऋषियों का हृदय करुणा से भर आया। वे जानते हैं कि समाज को अगर तत्त्वज्ञान की जरूरत नहीं दिखती तो वह नादान है। तत्त्वज्ञान की जरूरत नहीं है ऐसा मनुष्यों को लगता है लेकिन ऋषियों को लगता है कि मनुष्यों को तत्त्वज्ञान के बिना चलेगा नहीं।

ऐसे कई महापुरुष हो गए जिनको परम सत्य का साक्षात्कार हुआ और वे चुप हो गये। उन्होंने सोचा : 'लोगों को ऐसे ज्ञान की जरूरत नहीं है तो क्या बोलना?' कोई कोई ऐसे महापुरुष पके जिन्होंने महसूस किया : 'समाज को ज्ञान की वास्तविक जरूरत तो है लेकिन वह नहीं समझता तो उसे समझाना पड़ेगा। माँ देखती है कि बच्चा ठीक से भोजन नहीं कर रहा है, ऐसी वैसी बाजारू चीजें खा रहा है तो सच्ची माँ चिन्तित होती है। वह बच्चे को घर का भोजन मिले ऐसा प्रयास करती है। सौतेली माँ कहेगी : अगर बच्चे को जरूरत नहीं है तो मैं क्या करूं? वह माँगेगा तो दूंगी।'

हमारे ऋषि समाज की सौतेली माँ नहीं हैं। वे मनुष्य जाति के सच्चे मातापिता हैं। ऋषि के प्रसाद को ग्रहण करने का, सुनने का समय लोगों के पास नहीं हो फिर भी ऋषि लोग चाहते हैं कि किसी भी बहाने लोग आत्मज्ञान सुनने आ जायें। दुर्भाग्यवश तत्त्वज्ञान का अमृत पीने की तड़प नहीं है, तत्त्वज्ञान की गरिमा नादानी के कारण नहीं जानते हैं, आत्मशांति का मूल्य नहीं जानते हैं तो उन्हें यह मूल्य समझाना पड़ेगा, तभी उनका कल्याण होगा। आत्मज्ञान कितना दिव्य है, उसका क्या मूल्य है यह तो तुम आध्यात्मिक इतिहास देखो तो पता चलेगा। बड़े-बड़े सम्राटों ने राजपाट छोड़कर सिर में खाक डालकर हाथ में कांसा लेकर आत्मज्ञानी गुरुओं को रिझाया है। सम्राट तो क्या होते हैं जहाँ अवतार भगवान राम जैसे महान आत्मा भी गुरुओं का बड़ा आदर करते हैं!

प्रातःकाल ऊठ रघुनाथा ।
मात-पिता गुरु नावइ माथा ॥

भगवान राम सुबह-सुबह गुरु के आश्रम में पहुँच जाते थे और गुरुजी समाधि में होते तो हाथ जोड़कर दूर ही खड़े रह जाते। गुरुजी को विक्षेप नहीं डालते थे। जब वे समाधि से उठते तब साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते थे। कौन . . .? जिनका नाम जपकर लोग तर जाते हैं वे भगवान राम। (अनुसंधान टाइटल पेज नं. ३ पर)

ऋषि प्रसाद

सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

वर्ष : १

अंक : १

जुलाई - अगस्त १९९१

तंत्री : के. आर. पटेल

शुल्क वार्षिक	: रु. २२
त्रिवार्षिक	: रु. ६०
विदेश में वार्षिक	: US $ २२ (डालर)
त्रिवार्षिक	: US $ ६० (डालर)

* कार्यालय *

'ऋषि प्रसाद'

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

संत श्री आसारामजी आश्रम

साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.

फोन : ४८६३१०, ४८६७०२

विदेश में शुल्क भरने का पता :

International Yog Vedanta Seva Samiti
7-33 Oak St.
Fairlawn, N. J. 07410 U.S.A.
Phone : (201) - 794 - 6128

टाईपसेटींग : फोटोटेक्स्ट, अहमदाबाद।

प्रकाशक तथा मुद्रक : श्री के. आर. पटेल, श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, मोटेरा, अहमदाबाद-३८० ००५ ने शिवकृपा ओफसेट प्रिन्टर्स, २७, अमृत इन्ड. एस्टेट, दूधेश्वर, अहमदाबाद में छापकर प्रकाशित किया।

'ऋषि प्रसाद' हर दो महीने में ९ वीं दिनांक को प्रकाशित होता है।
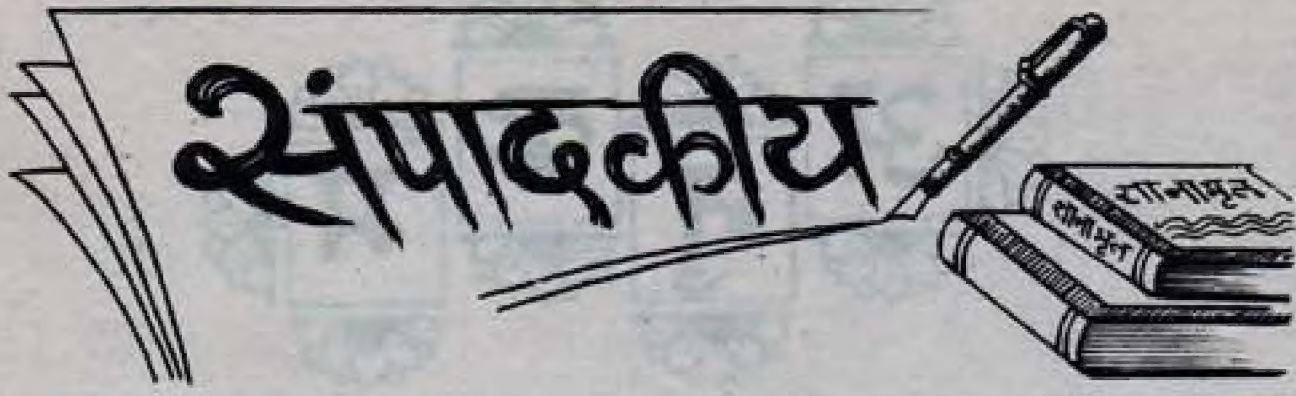
'ऋषि प्रसाद' का यह प्रथमाङ्क अध्यात्म पथ पर गमनशील नवपथिकों को अर्पित करते हुए हम धन्यता का अनुभव कर रहे हैं। 'ऋषि प्रसाद' का गुजराती द्वैमासिक तेजी से उभरा और फलता फूलता प्रगति-पथ पर अग्रसर है। 'ऋषि प्रसाद' की यह गंगोत्री अब हिन्दी क्षेत्रीय सत्संगियों एवं साधकों के तन-मन और जीवन से पाप-ताप एवं निराशांधकार का प्रच्छालन करके उनकी पवित्रात्मा में समुज्ज्वलता जगाये, उन्हें दिव्यता प्रदान करती रहे, आयोजकों की ऐसी तीव्र कामना है। अनेक सज्जन इस ईश्वरीय कार्य को सुसम्पन्न बनाने की दिशा में अपार रुचि दिखाते रहे हैं। ऐसे परहित परायण साधकों के आग्रह, प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद से अभिभूत एवं अनुप्रेरित होकर हम यह स्वर्णावसर प्राप्त करने जा रहे हैं। आभारी हैं हम उन सत्साधकों के जो स्वयं तो सदस्य बनते ही हैं, औरों को भी अध्यात्मपथ पर प्रधावित होने का प्रोत्साहन देकर अपने कर्त्तव्य को समुचित दिशा देते रहे हैं।

घर, बाहर या समाज में जहाँ कहीं भी सच्चाई, सेवा और निःस्वार्थवृत्ति का स्फुरण होता है वहाँ धर्मात्मा-जन की सच्ची धर्मपरायणता, सद्सेवावृत्ति का प्रभाव द्रष्टिगोचर होने लगता है। जैसा कि स्वामी विवेकानंदजी ने कहा है : "धर्म के कारण ही लोक-व्यवहार में सच्चाई, सहानुभूति और परोपकारवृत्ति के दर्शन होते हैं।"

धन्य हैं वे धर्मपरायण लोग जो संत और समाज के मध्य स्वयं सेतु बनकर अपने क्षणभंगुर जीवन को सार्थक बना लेते हैं। ईश्वरीय दैवी कार्य में सहयोगी बनकर अपने को धन्य बना जाते हैं। इस प्रकार सद्धर्म व्यापार में आत्मलीन हो वे स्वयं भी सद्धार्मिक हो जाते हैं, दैवी दिव्य अनुभव के साझीदार बन जाते हैं।

'ऋषि प्रसाद' का प्रथम लेख ऋग्वेद की ऋचा द्वारा जनजीवन को उज्ज्वल प्रकाश की ओर अनुप्रेरित करता है। द्वितीय लेख शिक्षा-दीक्षा, इच्छा और आवश्यकता तथा श्रेय-प्रेय मार्ग के प्रशस्तावक व्यासजी की महिमा का उद्घाटक है। गुरुदेव याज्ञवल्क्य के प्रति कृतज्ञताज्ञापक जनकजी के गुरुपूर्णिमा पर्व पर अभिव्यक्त संकल्प और साधना का अभिव्यंजक है। गुरुपूर्णिमा वर्षभर के सुपावन पर्वों का फलदायक महापर्व है। तदनंतर महर्षि मुद्गल की तपस्या, त्याग, सेवा, सदाचार का आख्यान भी है और शाश्वत प्राप्ति की निष्ठा का उद्घोष भी।

'सब घट मेरा साइयाँ ...।' नर-नारी में तो वह है ही, वृक्षों में भी उसी परमेश्वर की चेतना और सामर्थ्य परिपूरित है।

बालजन के हितार्थ संत-जीवनी को संकेतमय चित्रों द्वारा पुरुषार्थप्रवण, आत्मखोजपूर्ण, दैवीगुणों के विकास में अनुप्रेरक शिक्षाप्रद बनाकर प्रस्तुत किया गया है। साथ ही है स्वास्थ्य-सुरक्षा की सद्शिक्षा भी।

अन्य लेख हैं बृहदश्व, बलि एवं स्वामी रामदास के अनुप्रेरक कथा-प्रसंग एवं गीता-अमृत आदि पर।

'ऋषि प्रसाद' मात्र आध्यात्मिक द्वैमासिक ही नहीं, दिव्यानुभूति की नूतन पिटारी भी है। इसे पढ़-पढ़ाकर कोई चाहे भी तो रद्दी की टोकरी में फेंकने की जुर्रत नहीं कर सकता, क्योंकि उसके वर्ण-वर्ण सुवर्ण के हैं, अध्यात्मज्ञान के हैं, दिव्यज्ञान के हैं। दिनोदिन इसके पठन-पाठन, मनन-चिंतन द्वारा भला कौन भाग्यहीन अपने जीवन को धन्य बनाने का यह सुअवसर हाथ से खोना चाहेगा? हम विनम्र आयोजकों का यही लक्ष्य भी तो है।

विनीत,
श्री यो. वे. से. समिति
अहमदाबाद आश्रम।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर् मन्त्रं वदत्युकथ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

'सचमुच परमात्मा और ब्रह्मज्ञानी महात्मा पुरुष ही स्पष्ट रूप से प्रशंसनीय सलाह देते हैं। उनकी सलाह में इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देवों का निवास होता है।' (ऋग्वेद : १.४०.५)

हे जग-चक्रवात में फँसे हुए .. पथ-भ्रमित मनुष्य ! तूफानों के ऐसे बवंडर तो जीवन में कदम कदम पर आते ही रहेंगे। उनसे हतप्रभ हो इधर-उधर क्यों भटकते हो? जब तुम्हें कोई मार्ग न दिखे तब परमात्मा की शरण में हो जा। उसकी दिव्य ज्योति तुझको प्रकाशमय कर देगी।

कभी भी तू किसी पथभ्रष्ट वितंडावादी या अकर्मण्य को अपना मार्गदर्शक न बना लेना। वर्ना ये लोग तुम्हें पथभ्रष्ट कर देंगे।

तेरे अबोध मन में जब भी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का द्वन्द्व उठ खड़ा हो, तू अन्तर्मुख हो जा और सहृदयी पूत भावना भावित दिव्य ज्ञान के अधिपति परमात्मा की शरण में जा। अपनी सारी उलझनें उसके समक्ष उँडेल दे और निश्चिन्त हो जा। परम दयालु प्रभु हर हाल में मार्गदर्शन देगा। उसका ज्ञानदीप प्रज्ज्वलित हो उठेगा और तेरे हृदय का तिमिर छिन्न-भिन्न कर तेरा पथ पशस्त कर देगा।

यदि तुझमें परमात्मा की प्रत्यक्ष प्रेरणा सुनने और ग्रहण करने की योग्यता न हो तो भी निराश न हो, किसी ब्रह्मज्ञानी सत्पुरुष की शरण में जा। ये सत्पुरुष वेदों के मर्मज्ञ, अनुभवनिष्ठ, सत् चित् में नित्य निमग्न रहनेवाले, प्राणिमात्र के प्रति मित्रभावापन्न और कर्त्तव्याकर्त्तव्य के सच्चे पारखी होते हैं। उनकी शरण में जाकर अपने मन का समाधान पा ले।

जो ब्रह्मज्ञानी गुरु हैं उनके मार्गदर्शन में इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा का मार्गदर्शन भी निहित होता है। इन्द्र ऐश्वर्य, शक्ति, प्रगति, जय और विजय सूचक देवता है। वरुण पाप-विमोचक शक्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है। वह मैत्री और पारस्परिक स्नेहसौहार्द्र का सूचक है। अर्यमा ऊँच-नीच विभेद व्यवहार और न्यायकारिता का देवता है। ब्रह्मज्ञानी के मार्गदर्शन में इन सभी देवों का साहचर्य होता है। अर्थात् इन देवों की सीख ब्रह्मज्ञानियों के मार्गदर्शन में स्वतः समाविष्ट मानी जा सकती है।

अतः दैनंदिन जीवन में स्वयंभू हल न पा सके ऐसी कोई समस्या आ पड़े तो ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की सलाह ले। तदनुकूल चलकर तू आत्मोत्कर्ष को पा ले, इस प्रकार तू विजय को हांसिल कर सकेगा, पाप से बच जाएगा, जन-जन के प्रति मैत्रीभाव से परिपूर्ण बनेगा और न्याय का आदर्श प्रस्थापित कर सकेगा।

जीवन में जब कभी संशय तुम्हें घेर ले तब ब्रह्मज्ञानी सत्पुरुष और परमात्मा के सम्मुख निर्मल मन से पहुँच जा, उनका मार्गदर्शन ले और नतमस्तक हो अपने जीवन का सुफल प्राप्त कर ले। उनके आदेश को अपने जीवन का कानून बना ले।

*

सद्गुरु महिमा

[व्यासपूर्णिमा पर्व पर पूज्यश्री का उद्बोधन]

पढ़ाई-लिखाई से भौतिक योग्यता आती है और एकाग्रता से यौगिक सामर्थ्य आता है। सामर्थ्य को प्रकाश की जरूरत है। योग और संसार की शिक्षा से व्यक्ति की योग्यता बढ़ती है। शिक्षित व्यक्ति की समाज को आवश्यकता है। शिक्षित व्यक्ति सुचारु रूप से कार्य का विस्तार कर सकता है। अशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा शिक्षित व्यक्ति के पास लौकिक व्यवस्था का सामर्थ्य ज्यादा होता है। शिक्षित व्यक्ति के जीवन में अगर दिशा ठीक नहीं है तो वह अपना सामर्थ्य दूसरों को ठीक करने में लगायेगा। सामर्थ्य के साथ अगर प्रकाश नहीं है तो वह सामर्थ्य अंधकार में उधम मचायेगा। ऐहिक शिक्षा से सामाजिक व्यवस्था का साधन जुटाने का सामर्थ्य आता है। लेकिन दिशा उचित न होने से वह सामर्थ्य परपीड़न और अपनी वासना-तृप्ति में लगाया जाता है। जीवन की शोभा और ऊँचाई आवश्यकता-पूर्ति और वासना-निवृत्ति में है। मनुष्य में एक होती है वासना से प्रेरित चेष्टा और दूसरी होती है आवश्यकता की पूर्ति। आवश्यकता-पूर्ति का सबको अधिकार है और आवश्यकता आसानी से पूरी होती है। पेट का गड्ढा भरना यह आवश्यकता है। शरीर ढकने के लिए वस्त्र, आवास आदि की भी आवश्यकता है। लेकिन 'ऐसा कपड़ा, ऐसा खाना, ऐसा रहना, ऐसा धन चाहिए ...' यह सब वासना है। जीवन में यदि सही दिशा नहीं तब जीवन बोझीला हो जाता है, परिवार और समाज के लिए शाप बन जाता है। विश्व को युद्ध के किनारे पर पहुँचानेवाला हिंसक और चरित्रहीन बन जाता है। ऐसा आदमी विश्वेश्वर को मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहता।

जीवन का लक्ष्य है शांति, मुक्ति, आवश्यकता-पूर्ति और इच्छा की निवृत्ति। अगर इच्छा-निवृत्ति की दिशा नहीं मिली तो इच्छाएँ आगे बढ़कर आदमी को ही दबोच लेती हैं।

चाह चमारी चूहरी अति नीचन की नीच ।
तू तो पूरण ब्रह्म था जो चाह न होती बीच ॥

इच्छाओं के उस पार परम पद में पहुँचाने के लिए व्यवस्था देने का जो सामर्थ्य रखते हैं, हमारी बुद्धि को जो दिशा देते हैं ऐसे भगवान व्यास, भगवान आद्य शंकराचार्य, भगवान कृष्ण और भगवान राम आदि परम गुरु हैं।

जीवन का लक्ष्य है शांति, मुक्ति, आवश्यकता-पूर्ति और इच्छा की निवृत्ति। अगर इच्छा-निवृत्ति की दिशा नहीं मिली तो इच्छाएँ आगे बढ़कर आदमी को ही दबोच लेती हैं।

भगवान कृष्ण युद्ध के मैदान में अर्जुन को दिशा दे रहे हैं। अर्जुन में बल, सामर्थ्य तो था लेकिन दिशा के अभाव में वह बल और सामर्थ्य उसे विषाद में गिरा रहा था, विमूढ बना रहा था, इसलिए जीवन में दिशा की नितांत आवश्यकता है।

दीक्षा का मतलब है जीवन की सच्ची दिशा। जीवन को दिशा देने का, उसे सँवारने का, उसका सही हिसाब लगाने का दिन गुरुपूर्णिमा है। जैसे वणिक जन के हिसाब लगाने का दिन वर्ष का आखिरी दिन दिवाली होता है। नये वर्ष में कौन-सा धंधा करना, किस जाति का माल लाना या किसे बंद करना, वह सब निर्णय व्यापारी लोग स्वयं करते हैं। ऐसे ही साधक को कैसा जीवन जीना, क्या नियम लेना, किन कारणों से पतन होता है, किन कारणों से भगवान और गुरुओं से वह दूर हो जाता है और किन कारणों से भगवद्तत्त्व के नजदीक आ जाता है ... इस प्रकार का अध्ययन, चिंतन करके

गई बीती का सिंहावलोकन करके नये के लिए संकल्प करने का नव वर्ष है व्यासपूर्णिमा।

दीक्षा का यह मतलब नहीं कि कंठी बाँध लो, किसी मतमतांतर, मजहब या किसी संप्रदाय की डोर गले में डाल दो। दीक्षा का मतलब है जीवन की सच्ची दिशा। भगवान वेदव्यासजी ने ऋषियों के बिखरे हुए अनुभवों को एकत्रित किया, मृत्यु का रहस्य जाना, जीवन की दिशा को खोजा। वे स्वयं चिरंजीवी तो हुए ही, आध्यात्मिक जगत के सच्चे पथ-प्रदर्शक भी हुए। उन्होंने भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं की वंश वेलि के संचालन के लिए संतति का दान भी किया। परिणामत: पाँडव वंश और कुरुवंश का लीला-विस्तार चला। विदुरजी भी उन्हीं की प्रदेन थे। वे ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने श्रेय और प्रेय की सुव्यवस्था की। जीवन में आवश्यकता-पूर्ति की सुदिशा भी बताई और आवश्यकताओं से भिन्न वह परम तत्त्व जो जीवन में नितांत आवश्यक है उसका भी सन्मार्गदर्शन किया।

व्यास किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। श्रेय और प्रेय की व्यवस्था करनेवाले को व्यास कहा जाता है। जिन्होंने अपनी वृत्ति की ठीक व्यवस्था की, वैदिक ज्ञान की ठीक व्यवस्था की, समाज की ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति के लिए महाभारत और ब्रह्मसूत्र जैसे ग्रंथों की व्यवस्था की ऐसे व्यासजी आज के दिन सनातन धर्म के सद्प्रेमियों के लिए अहोभाव से आदरणीय हैं, पूजनीय हैं।

> **दीक्षा का मतलब है जीवन की सच्ची दिशा। जीवन को दिशा देने का, उसे सँवारने का, उसका सही हिसाब लगाने का दिन गुरुपूर्णिमा है।**

कृष्ण द्वैपायन के बाद और भी कई व्यास हुए हैं फिर भी अलग अलग समय में, अलग अलग शरीरों में जो एक आत्मा है, जिनकी दृष्टि एक है, जिनका चित्त समाज के लिए द्रवीभूत होता है, जिनका हृदय अत्यंत उदार है, हमारे चित्त को योग्य मार्ग पर चलाने की व्यवस्था जिनके पास है ऐसे सब ब्रह्मवेत्ता व्यासजी ही हैं। वे महापुरुष साधकों के लिए तथा समाज के लिए श्रेय और प्रेय के द्वार खोलकर हृदयपूर्वक निमंत्रण देते हैं कि : "आओ मेरे प्यारे साधक! अपनी ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति के इच्छुकों! आ जाओ। तुम यशस्वी बनो। तुम संयमी बनो। तुम तेजस्वी बनो। तुम अपना और अपने पूर्वजों का नाम रोशन करो। तुम अपना और अपने कुल में आनेवाले वंशजों का मार्गदर्शन करो। तुम ऐसे महान आत्मा बनो।"

हम आज के दिन बड़े ही अहोभाव से अपने दिल में ऐसे व्यासों के सद्ज्ञान को, उनकी सन्निष्ठा को और उनकी सुदिशा को आमंत्रित करते हैं। भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास ने ऋषियों के विश्रृंखलित अनुभव को लिपिबद्ध कर उसमें अपनी अनुभूति चासनी भरकर उसे विश्व का सर्व प्रथम दार्शनिक आर्षग्रंथ ब्रह्मसूत्र का स्वरूपाकार दिया। वेदव्यासजी ने उस सद्ग्रंथ की संरचना का प्रारंभ अषाढ़ी पूर्णिमा के शुभ दिन पर किया था। कथा-पुराण और सामाजिक समुन्नति की विभिन्न नीतियों का गठन करके पंचम वेद महाभारत आज के दिन ही पूर्ण हुआ था। देवताओं ने उनका पूजन किया। आज के दिन को शुभाशीर्वाद दिया कि : "अपना श्रेयस् और प्रेयस् चाहनेवाले, अपनी आवश्यकता को ठीक-ठीक समझनेवाले जो भी लोग ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के शरण में इस पवित्र पूर्णिमा के दिन आयेंगे वे वर्षभर के पुण्य पर्व के सद्फल के पुण्यभागी बनेंगे।"

जीवन में एक होती है आवश्यकता दूसरी होती है इच्छा। इच्छा को सुनियंत्रित करके निवृत्त करने से जीवन चमकता है और आवश्यकता की सहज ही पूर्ति होती है। अगर जीवन में यह दिशा नहीं है तो पढ़ा अनपढे से भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध होगा। वह उससे ज्यादा परेशान हो जायेगा। शिक्षित अशिक्षित की अपेक्षा अपने कुटुम्ब का, समाज और देश का अत्यधिक सत्यानाश कर डालेगा।

श्रीकृष्ण और सुदामा स्वयं सांदीपनि गुरु के शिष्य

जिनका चित्त समाज के लिए द्रवीभूत होता है, जिनका हृदय अत्यंत उदार है, हमारे चित्त को योग्य मार्ग पर चलाने की व्यवस्था जिनके पास है ऐसे सब ब्रह्मवेत्ता व्यासजी ही हैं।

होने का आनंद अनुभव किया करते थे।

संजय जिस समय धृतराष्ट्र से कहते चलते हैं कि युद्ध में यह हुआ, वह हुआ तो धृतराष्ट्र पूछते हैं : "संजय! विजय किसकी होगी?" संजय बात टालता हुआ अंततः बोल उठता है कि :

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

'जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और धनुर्धारी अर्जुन है वहाँ श्री, विजय, विभूति और अचलनीति है, ऐसा मेरा मत है।'

धृतराष्ट्र कहते हैं : "यह क्या बोल रहा है?"

तब संजय कहता है : "महाराज! अगर यह बात झूठी हो तो आप मुझे भगवान वेदव्यास का शिष्य मत समझना।"

सतशिष्य अपने आत्मारामी गुरु को पाकर धन्यता अनुभव करता है और सतशिष्यों को पाकर सद्गुरु का दिल भी गौरवान्वित हो उठता है। इस गौरव में अभिमान तो है लेकिन देहाभिमान नहीं है। इस गौरव में आत्माभिमान है। संसारी लोग जिसको आत्माभिमान बोलते हैं वह सूक्ष्म शरीर का आत्माभिमान है लेकिन सद्गुरु और सतशिष्यों के मध्य ब्रह्मात्मैक्य का अपना एक विशिष्ट गौरव होता है।

ॐ सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै ।

हम दोनों गुरु और शिष्य तेजस्वी हों, हमारी साथ-साथ उन्नति हो।

याज्ञवल्क्यजी से जनक ने कहा है कि : भगवन्! आपने जो दिया है उसका बदला चुकाने के लिए मैंने जो भी पुण्य किये हैं, बावड़ियाँ और तालाब खुलवाये हैं, यज्ञयाग किये हैं, अन्नक्षेत्र, सराय एवं सदाव्रत सुलवाये हैं, और भी जो कुछ मैंने पुण्यकर्म या सत्कर्म किये हैं वे सब आप पर अर्पित हैं। यह राज्य, पुत्र, पत्नी सहित मेरा परिवार और मैं आपको अर्पित करता हूँ। कृपया स्वीकार कीजिए।

गुरुदेव! आपने जो शाश्वत प्रसाद दिया है उसका बदला मैं इन नश्वर चीजों से नहीं चुका सकता। मैं तो यह प्रार्थना करता हूँ कि आपकी ब्रह्मनिष्ठा और आत्मा की मस्ती और खिले, फूले-फले और हमारे जैसे पिपासु जन को यह अमृत सदा मिलता रहे। गुरुदेव! आप चिरायु हों, आपका ज्ञान चिरकाल तक रहे और हम पर आपकी चिर कृपा सदा बरसती रहे।

हे महाराज! आपने जो कुछ दिया है उसका बदला चुकाने का दम इन नश्वर चीजों में कहाँ?

(अनु. पेज नं.२१ पर)

समाज को श्रेयस् और प्रेयस्, आवश्यकता और प्रकाश, सामर्थ्य और शक्ति देने की जिनमें सामर्थ्य है वे व्यक्ति मोक्षदाता और समाजोद्धारक होते हैं। समाज की सच्ची उन्नति और समुद्धार इन्हीं महापुरुषों के द्वारा होती है। शेष जो होते हैं, बम बनाने की विद्या सिखाते हैं, जमीं और जर-जायदाद की विधि बताते हैं और नित्य नश्वर कुर्सियों की रक्षा करने के हथकंडे बताते हैं, जबकि सद्गुरु शाश्वत आत्मपद पर बिठाने की ही सुचेष्टा में प्रवृत्त रहते हैं।

गीता – अमृत

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज

वेदोक्त रीति के अनुसार यज्ञशाला में बैठकर देवताओं के लिए जो होम-हवन किये जाते हैं, संकल्पपूर्वक दान किये जाते हैं उसमें धर्म की प्रधानता है। धर्म की भावना के बल पर यह सब सम्पन्न किया जाता है। मंदिर या एकान्त स्थल में बैठकर की जानेवाली पूजा उपासना प्रधान है। आसन, प्राणायाम एवं योग आदि साधना-विधियों में समाधि की प्रधानता है।

वेदान्त इन तीनों से विलक्षण है। इसमें तत्त्वदर्शन की प्रधानता है। 'आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? जगत क्या है? मैं कौन हूँ?' इसका श्रवण करो, मनन करो, निदिध्यासन करो और अन्ततः उस तत्त्व का साक्षात्कार करो। यही वेदान्त की रीति है।

गीता जिस धर्मोपासना, योग या ज्ञान का विवेचन करती है वह कुछ निराला ही है। वह यज्ञशाला, मंदिर, गिरि-गुफा या नदीतट पर पद्मासन लगा की जानेवाली साधना नहीं। गीता में निर्दिष्ट साधना को दैनंदिन लोक-व्यवहार में भी की जा सकती है। गीता में वर्णित धर्म अनुष्ठान, कर्मयोग, ज्ञानयोग का अनुष्ठान व्रत मात्र नहीं है, होम-हवन ही नहीं है। गीता का योग तो ऐसा है जिसे दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों के मध्य भी सिद्ध कर सकते हैं। भोजन पकाते हुए, रोजी-रोजगार चलाते हुए या कोर्ट कचहरी के कार्य करते हुए भी गीता का कर्मयोग आचरण में उतार सकते हो। अरे ! भगवान श्रीकृष्ण तो यहाँ तक कहते हैं कि युद्ध करते हुए भी तुम गीता का योग सिद्ध कर सकते हो। युद्ध करने पर भी युद्ध से निर्लेप रह सकते हो। विश्व का कोई भी धर्म हमारे लोक-व्यवहार को अन्तरंग, सूक्ष्म और भगवन्मय बनाने में इतना शक्तिमान नहीं है। गीता तो ऐसा भी कहती है कि :

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

(गीता : ६.३०)

गीता का भक्त कैसा होता है इसका वर्णन भगवान नौवें अध्याय में १४ वे श्लोक में करते है।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

'वे दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिये यत्न

करते हुए और मुझको बारम्बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान में युक्त होकर अनन्य प्रेम से मेरी उपासना करते हैं।'

गीता का भक्त, भगवान श्रीकृष्ण का भक्त अकर्मण्य या पलायनवादी नहीं हो सकता। अर्जुन, उद्धव, अम्बरीष, लक्ष्मण, हनुमान, भरत आदि भगवान के अनन्य भक्त ही तो थे। भगवान के सिवाय और कहीं उनकी दृष्टि टिकती नहीं थी। फिर भी उनके व्यवहार में, उनके कार्यों में कहीं भी अकर्मण्यता, पलायनवाद, भीरुता को स्थान नहीं था। साधारण व्यक्ति न कर सके ऐसे महान कार्य इन कर्त्तव्यनिष्ठ भक्तों ने किये हैं। अपने कार्य में व्यस्त रहते हुए भी परमात्म-निष्ठा में अनन्य रहे। उनका कर्त्तव्य-बोध विशेष सुदृढ़ रहा। उनको प्राप्तव्य की कोई भी चिन्ता नहीं रही। भगवान का परम भक्त तो सेवा-कार्य में प्रवृत्त हो और मृत्यु भी आ जाय तो मृत्यु को भी आलिंगन देने को तत्पर रहा है। भगवान ने स्वयं कहा है :

गीता का योग तो ऐसा है जिसे दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों के मध्य भी सिद्ध कर सकते हैं। भोजन पकाते हुए रोजी-रोजगार चलाते हुए या कोर्ट कचहरी के कार्य करते हुए भी गीता का कर्मयोग आचरण में उतार सकते हो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

'कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, उसके फलों में अधिकार नहीं।'

(गीता : २.४७)

पाश्चात्य संस्कृति कहती है : 'First deserve and then desire. पहले योग्य बनो, बलिदान दो, बाद में ही इच्छा करो।' जबकि पौर्वात्य संस्कृति, गीता का ज्ञान कहता है : Deserve only and need not desire. तुम केवल अपने कर्त्तव्य का पालन करो। योग्य बनो। इच्छा करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है।

जैसे उपयुक्त पत्थर, लोहे का टुकड़ा या अन्य वस्तुओं को हम संभालते हैं वैसे ही कर्त्तव्य-कर्म करता हुआ ईश्वर का भक्त स्वयं प्रभु के लिए उपयोगी वस्तु बन जाता है, उसे फलाकांक्षा की आवश्यकता नहीं रह जाती। अन्तर्यामी ईश्वर स्वयं उसको संभाल लेता है। समाज और प्रकृति उसकी सेवा में सजग रहती है। ऐसी दशा में निष्काम कर्मवीर को इच्छा करने की क्या आवश्यकता? वह तो सत्कर्म की रीतियों पर चलकर स्वयं को योग्य बनाता है। फल की इच्छा से उसका क्या सरोकार?

गीतानुसार पुजारी वह है जो पूजा तो भगवान की करता है, पर मंदिर या मन-मंदिर में नहीं। उसकी पूजा न तो मूर्तिपूजा है और न मानसपूजा। वह तो अपने कर्मों के द्वारा भगवान की पूजा करता है। वह निष्काम कर्म करता है और वह भी ईश्वरार्पण भाव से।

किसीके दिल को ठेस न पहुँचे, किसीका कहीं कुछ बुरा न हो, कोई हानि न हो इसका ध्यान रखते हुए जो कर्म किया जाता है वह कर्म यज्ञ है, पूजा है, उपासना है। ऐसा कर्म करनेवाला साधक ही परमात्मा के समग्र रूप का साक्षात्कार कर सकता है।

जैसे उपयुक्त पत्थर, लोहे का टुकड़ा या अन्य वस्तुओं को हम संभालते हैं वैसे ही कर्त्तव्य-कर्म करता हुआ ईश्वरका भक्त स्वयं प्रभु के लिए उपयोगी वस्तु बन जाता है। उसे फलाकांक्षा की आवश्यकता नहीं रह जाती। अन्तर्यामी ईश्वर स्वयं उसको संभाल लेता है।

गीता का भक्त झोंपड़ी, नदीतट या वन के विभेद में न पड़कर कर्मभूमि और लोक-व्यवहार में रहकर ही आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि कर लेता है। कभी-कभी मौन, अज्ञातवास या एकान्तवास का सहारा लेकर फिर समाज में परमात्म-प्रसाद बाँटने में प्रवृत्त हो जाता है ... मंद और म्लान जगत

को ओजस्वी और कांतिमान बनानेवाले ज्ञानी पुरुषों के दैवी कार्यों में सच्चे दिल से संलग्न हो जाता है।

भगवान का परम भक्त तो सेवा-कार्य में प्रवृत्त हो और मृत्यु भी आ जाय तो मृत्यु को भी आलिंगन देने को तत्पर रहा है।

गीता में समाधि से भी श्रेष्ठ एक अन्य वर्णित वस्तु है समत्व। समाधि से पतन हो सकता है, भक्त की भावना बदल सकती है लेकिन साधक अगर एक बार समता के सिंहासन पर आरूढ हो जाता है तो फिर वहाँ से उसका पतन नहीं हो सकता। स्वयं भगवान ने कहा है : 'समता मेरा परम धाम है।'

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।'

समाधि लगानेवाला, ध्यान करनेवाला योगी तो है लेकिन व्यवहार में रहते हुए दूसरों के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होनेवाला उससे भी श्रेष्ठ योगी है।

इस सिद्धांत को केवल बुद्धि में ही ग्रहण करने से काम नहीं चलेगा। इसे तो दैनिक व्यवहार एवं आचरण में उतारना होगा। यह गीता का परम योग है। विश्व के अन्य किसी भी सांप्रदायिक धर्मग्रंथ में सभी के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने वाले ऐसे वैज्ञानिक योग का वर्णन नहीं मिलेगा।

गीता के मतानुसार मानव वह है जो भगवान के मत का अनुष्ठान करता है। कर्मभूमि, युद्धभूमि, संघर्षभूमि या भोगभूमि में रहते हुए अपने समस्त क्रिया-कलाप परमात्मा को समर्पित करते रहें तभी अविचल शांति की प्राप्ति संभव है।

शक्ति की उपासना सामर्थ्य प्रदायिनी है। ज्ञान की समझ शांतिदात्री है। लेकिन जो साधक परमात्मा या सद्गुरु पर समर्पित हो जाता है उसके जीवन में शांति और शक्ति दोनों एक साथ ही उद्भूत हो जाते हैं। क्योंकि समर्पित भाव से शरण्य की शक्ति और ज्ञान ये दोनों समर्पित व्यक्ति को प्रसाद रूप में सुलभ हो जाते हैं। गीता के १८ वें अध्याय के ६६ वें श्लोक में भगवान ने निर्देश दिया है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'सम्पूर्ण धर्मों को त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में हो ले। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से उन्मुक्त कर दूँगा, व्यर्थ शोक को त्याग दे।'

जब करो जो भी करो अर्पण करो भगवान को ।
सदा कर दो समर्पण त्यागकर अभिमान को ॥

...तो गीता के इस ज्ञानयोग को, गीता के कर्मयोग को, गीता की ईश्वरभक्ति को अपने जीवन में साधन के रूप में उतारने का एकनिष्ठ प्रयास करना ही गीताभक्त की साधना है। यही उसके सर्व प्रयास की निष्पत्ति है। एकबार गीता का ज्ञान व्यवहार में उतरा नहीं कि वह भक्त या साधक सभी में परमात्मा को और परमात्मा में सबको देखता हुआ वह स्वयं भगवद्रूप बनकर निर्भय हो जाता है। इस दशा के लिए महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है :

'अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि ।'

शक्ति की उपासना सामर्थ्य प्रदायिनी है। ज्ञान की समझ शांतिदात्री है। लेकिन जो साधक परमात्मा या सद्गुरु पर समर्पित हो जाता है उसके जीवन में शांति और शक्ति दोनों एक साथ ही उद्भूत हो जाते हैं। क्योंकि समर्पित भाव से शरण्य की शक्ति और ज्ञान ये दोनों समर्पित व्यक्ति को प्रसाद रूप में सुलभ हो जाते हैं।

'हे जनक ! तू अभय अवस्था को प्राप्त हो गया है।'

अतः इसी जीवन में गीता के योग को आत्मसात् करने के लिये दृढ़ पुरुषार्थ करो। कभी-कभी एकान्त में ध्यान, योग एवं साधना करके अपने चित्त को निष्काम बनाते चलो। वही निष्कामता दैनंदिन व्यवहार में तुम्हें कर्मयोग का प्रसाद चखाती है। साधन-भजन का समय दैनिक एक आध घण्टा, हृदय की शुद्धि करने का समय एक-दो घण्टा ही चाहिए ऐसा कभी मत मानना। यह तो समय निश्चित है ही, लेकिन प्रवृत्ति के समय भी हृदय-शुद्धि का ध्यान रखते हुए गीता के समत्वयोग का अनुभव करने के लिए दृढ़निश्चयी बनो।

आँख सदा के लिये मुँद जाय इसके पहले आत्मज्ञान की आँखें खोल लो। जीवन की संध्या हो जाय उसके पहले जीवनदाता से पहचान साध लो।

लग जाओ .. सजग हो जाओ। समय भाग रहा है। व्यर्थ कर्म, व्यर्थ चिन्तन और व्यर्थ संगियों से बचकर निष्काम कर्म, सत्संग और आत्म-स्वरूप का चिन्तन निरंतर चलता रहे .. चित्त की अवस्था में नित्य साम्यता रहे इस पर अत्यधिक ध्यान देना होगा।

ब्राह्ममुहूर्त में ही जाग जाओ। बिस्तर में बैठकर चिन्तन करो कि कैसी भी परिस्थिति में चित्त को शांत रखूंगा .. जो कुछ भी करूँगा ईश्वर और गुरुदेव प्रसन्न हों ऐसे ही कर्म करूँगा ..' ऐसा दृढ़ निश्चय करो। अपने श्वासोच्छ्वास को निहारते जाओ। मन ही मन श्वास को गिनते जाओ। नहा-धोकर जब भी प्राणायाम करो तब गहरे श्वास खींचो। नाभि तक पेट अन्दर रखकर श्वास से भरपूर हो जाओ। आधे मिनट के पश्चात् शनैः शनैः श्वास को छोड़ते चलो। दस-पन्द्रह बार ऐसे ही करते रहो। प्रातः में रिक्त पेट तुलसी का रस और १००-२०० ग्राम दही या छास लेने से तुम्हारे शरीर के तमाम रोग दूर रहेंगे। स्फूर्ति और आरोग्यता में अभिवृद्धि होगी।

नित्य अपने साथ शिक्षाप्रद श्लोक सुवाक्य और स्तोत्र रखो। दिन में जब भी समय मिले उनका लाभ लो। कुछ ही दिनों में तुम्हें एक निराला आनन्द, आत्मा-परमात्मा की अनोखी झाँकियाँ मिलने लगेंगी। सुख-दुःख में सतर्क और सम रहने की योग्यता का अपने में विकास करो। आँख सदा के लिये मुँद जाय इसके पहले आत्मज्ञान की आँखें खोल लो। जीवन की संध्या हो जाय उसके पहले जीवनदाता से पहचान साध लो।

हिम्मत करो। ध्यान करो। यह जगत दुर्बलों के लिये नहीं है। जय-पराजय की परवाह किये बिना लगे रहो .. लगे रहो .. विजय तुम्हारी ही है। तुम तो धन्य होगे ही, तुम्हारे संपर्क में आनेवाले भी धन्य होने लगेंगे।

ॐ .. ॐ .. ॐ ..

कार्य .. सजगता .. समता .. सदाचरण .. और साहस ..।

*

* किसी भी महीने से 'ऋषि प्रसाद' के सदस्य बन सकते हैं किन्तु सदस्य शुल्क जुलाई से जुलाई (गुरुपूर्णिमा से गुरुपूर्णिमा) तक का लिया जाएगा। गत अंक स्टोक में होंगे तब तक प्राप्त हो सकेंगे।
* 'ऋषि प्रसाद' हर दूसरे महीने नौवीं दिनांक को प्रकट होगा। किसी कारणवश दस दिन तक अंक प्राप्त न हो सके तो स्थानिक डाकघर में पूछताछ करने के बाद कार्यालय को सूचना दें। अंक स्टोक में होगा तब तक मिलेगा।
* 'ऋषि प्रसाद' मेगजीन विषयक कोई भी पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम, पूरा पता, अपना सदस्य क्रमांक एवं एजन्ट कोड अवश्य लिखें। पत्र-व्यवहार का पता : 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय, श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५. फोनः ४८६३१०, ४८६७०२

'गुरुरेको हि तारकः ...'

राजा बृहदश्व बड़ी ही श्रद्धा से अपने गुरुदेव का पूजन करता था। वह गुरु में भगवद्‌बुद्धि करके उनके सम्मुख बैठकर उन्हें एकटक निहारा करता था। ऐसे समय गुरु के रूप में छिपे हुए परमात्मा की कृपा उस पर बरसने लगती। इससे उसका पुण्य बढ़ता गया। राजा बृहदश्व के राज-काज में कृषि-उत्पादन और वृष्टि आदि समुचित होने लगी। जो राजा पुण्यात्मा होता है, प्रकृति के सब साधन उसके अनुकूल होने लगते हैं।

अन्न, धन, वैभव बढ़ता हुआ देखकर बृहदश्व को यह विचार आया कि मुझे अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला इन्द्र बनता है। बृहदश्व ने अश्वमेध यज्ञ करने का श्रीगणेश किया। राजा यज्ञ करता रहा। गुरुदेव कोई और जगह एकांत में समाधि में बैठे थे। जब समाधि से उतरे तब सोचा कि अहोभाव से एकटक निहारकर मुझको अपनेमें और अपनेको मुझमें अर्पित भाववाला मेरा शिष्य बृहदश्व क्या करता है? गुरु ने देखा कि बृहदश्व तो एक सौ यज्ञ करके पुण्य कमाने के चक्कर में लगा है। बानवे यज्ञ वह कर चुका था। अब सौ यज्ञ पूरे करेगा तो फिर मरकर इन्द्र बनेगा और हजारों लाखों वर्ष इन्द्र बनकर भोग भोगेगा। मेरे सान्निध्य में तो पुण्यलाभ किया मगर अप्सराओं का नाचगान देखकर वह पुण्य खत्म होने पर फिर मनुष्य बनेगा।

गुरु में भगवद्‌बुद्धि करके उनके सम्मुख बैठकर उन्हें एकटक निहारा करता था। ऐसे समय गुरु के रूप में छिपे हुये परमात्मा की कृपा उस पर बरसने लगती। इससे उसका पुण्य बढ़ता गया।

अरे! यह कहाँ जा रहा है? मनुष्य से गिरते-गिरते हिरण, खरगोश और कीड़े आदि की योनियों में भी तो जा सकता है। गुरुदेव ने अपना शरीर छोड़ दिया और नया जन्म धारण किया।

वे जीवन्मुक्त महापुरुष कभी शरीर को 'मैं' नहीं मानते। सदा 'अहं ब्रह्मास्मि' के नित्य निरंजन स्वरूप में रमणशील होते हैं। उनके लिए शरीर छोड़ना और धारण करना वह भी खेल है।

जैसे वामन भगवान अपने

भक्त बलि के आगे ब्रह्मचारी का रूप लेकर आ गये ऐसे ही राजा बृहदश्व के गुरु नौ वर्ष के बटुक ब्रह्मचारी बनकर पधारे। बृहदश्व ९९ यज्ञ पूरे कर चुका था। सौवाँ यज्ञ कर रहा था।

तीन चीजें हमारा पीछा जन्म-जन्मांतर तक करती चली जाती हैं। एक तो हमारे कर्म। जब तक आत्मज्ञानी गुरु की ज्ञानाग्नि हमारे कर्मों को नहीं जलाती तब तक कर्म पीछा नहीं छोड़ते। दूसरा चैतन्य परमात्मा, ईश्वर पीछा नहीं छोड़ता और तीसरा, सद्गुरु सतशिष्य का पीछा नहीं छोड़ते।

जीवन्मुक्त महापुरुष कभी शरीर को 'मैं' नहीं मानते। सदा 'अहं ब्रह्मास्मि' के नित्य निरंजन स्वरूप में रमणशील होते हैं। उनके लिए शरीर छोड़ना और धारण करना वह भी खेल है।

बृहदश्व के पास गुरुदेव आये केवल नौ वर्ष के बटुक वामदेव के स्वरूप में। राजा उठकर खड़ा हो गया। अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन करके आसन दिया।

बृहदश्व बोला : "आज्ञा दीजिये, प्रभु! मेरे द्वार पर जो भी ब्राह्मण आता है उसे मैं मनचाहा दान देता हूँ। अश्वमेध यज्ञ करनेवाले के लिए यह नियम है कि याचक ब्राह्मण जो कुछ भी माँगे वह अदेय नहीं होना चाहिए। महाराज! मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं। आप जो आज्ञा करें सो मैं आपको अर्पित करूँगा।"

बटुक ब्राह्मण बोला : "अगर बदल गया तो?"

बृहदश्व : "महाराज! नहीं बदलूँगा।"

ब्राह्मण : "पहले संकल्प कर।"

जैसे वामन भगवान ने बलि से अंजलि में जल देकर संकल्प कराया था ठीक वैसे ही बृहदश्व से सद्गुरुदेव भगवान वामदेव ने संकल्प कराया।

"यमराज! यह कैसा अन्याय है? मैंने तो सब दे डाला था फिर मुझे मरुभूमि में क्यों भेजा गया?"

ब्राह्मण : "संकल्प करो कि जो कुछ मैं माँगूंगा वह सब कुछ तू दे देगा।"

बृहदश्व : "महाराज! आप जो कुछ भी माँगेगें, मैं सभी कुछ दूँगा। आप हजार सोनामोहरें, दस हजार सोनामोहरें तो क्या? अरे! मेरा पूरा राज्य भी माँगेंगे तो भी मुझे देना है। क्योंकि अश्वमेध यज्ञ करनेवाले को उस वचन का पालन करना पड़ता है। आप कुछ भी माँगें, मेरे लिए अदेय नहीं है।"

ब्राह्मण : "मैं और कुछ नहीं माँगता हूँ, जो तेरा है सो मेरा हो जाय।"

कृपालु गुरुदेव ने ऐसा माँग लिया कि बृहदश्व निहाल हो जाय, कभी कंगाल न हो, कभी किसीके गर्भ में फिर उल्टा न लटके, कभी विकार उसका पीछा न करे, कभी पुण्य और पाप की चोटें वह न सहे।

न मौज उड़ाना अच्छा है,
न चोटें खाना अच्छा है ।
अगर हो अकल ऊँची तो
रबको पाना अच्छा है ॥

शिष्य मौज़ मज़ा उड़ाने के लिए यज्ञ कर रहा था।

गुरु ने कहा : "जो तेरा हो सो मेरा हो जाय।"

यहाँ राजा को गुरु-शिष्य के संबंध का ज्ञान नहीं है। एक तेजस्वी ब्राह्मण है इस नाते बृहदश्व ने सब दे डाला। फिर वामदेव ने कहा : "देखो! दान तो दे दिया, अब दक्षिणा लाओ।"

राजा अपने पुत्र की ओर देखता है तो वामदेव कहते हैं : "राजकुमार जो तेरा है वह मेरा हो गया।"

जहाँ-जहाँ उसका मन जाता है, गुरु ईशारा करते हैं कि जो तेरा है सो मेरा हो गया है। अब राजा विह्वल हो गया। मन आश्चर्य में पड़ गया। एक गोता खाया। स्वप्न कहो, गुरु का संकल्प कहो या ईश्वर की माया कहो लेकिन उसने देखा कि मैं मर गया हूँ। मरकर यमपुरी गया हूँ

और मेरा हिसाब देखा जा रहा है। उससे कहा गया कि : "तुमने सौ यज्ञ पूरे नहीं किये, ९९ ही यज्ञ हुए। इसलिये इन्द्र बनने का अधिकार तुमको अभि प्राप्त नहीं होगा, उपेन्द्र बनने का अधिकार प्राप्त होगा। साथ-साथ तुमने इतने यज्ञ किये तो प्रजा का जो कर आदि लेकर खून चूसा, यज्ञ में 'स्वाहा ... स्वाहा ...' करने पर जो जीवजंतु मरे, कर्त्ता होकर जो कर्म किये उसका फल सुख भी मिलेगा और कर्म में जो गलती हुई उसका फल दुःख भी मिलेगा। तो बताओ, पहले उपेन्द्र पद का मजा लेना है या जो कर्म किये हैं उसकी सजा भोगनी है?"

तब बृहदश्व कहता है कि : "पहले दुःख भोगकर सुख भोगना ठीक होगा।"

उसी क्षण वह मरुभूमि में गिराया गया। मरुभूमि की बालू में तपने लगा। धूप इतना नहीं तपाती जितना धूप से तपी हुई बालू तपाती है। राजा पीड़ा से मूर्छित हो गया। मूर्छा से उठने पर विचार आया कि मुझे यमदूतों ने यहाँ क्यों फेंका? जो मेरा था वह तो मैंने बटुक ब्राह्मण को दे दिया। जब सब दे दिया तो पुण्य भी दे दिया, फिर पाप अकेले मेरा कैसे रहा?

बृहदश्व बोला : "यमराज! यह कैसा अन्याय है? मैंने तो सब दे डाला था फिर मुझे मरुभूमि में क्यों भेजा गया?"

यह कहते हुए वह देखता है कि वामदेव उसके सम्मुख मुस्करा रहे हैं। वामदेव ने संकल्प किया तो राजा बृहदश्व को उनमें अपने गुरुदेव का दीदार होने लगा।

कृपालु गुरुदेव ने ऐसा माँग लिया कि बृहदश्व निहाल हो जाय, कभी कंगाल न हो, कभी किसी के गर्भ में फिर उल्टा न लटके, कभी विकार उसका पीछा न करे, कभी पुण्य और पाप की चोटें वह न सहे।

बृहदश्व बोला : "गुरुजी! आप? भूल हो गई।"

वामदेव बोले : "बेटा! तूने 'जो कुछ मेरा हो सब आपका हो जाय' ऐसा कह तो दिया फिर भी तुझे सत्कर्म का फल भोगने की जो वासना थी उसके कारण तुझे मरुभूमि में गिराया गया। इस वासना को छोड़ दे। इन्द्र होने की वासना करता है तो मरुभूमि में भी जाना पड़ेगा और माँ के गर्भ में भी जाना पड़ेगा। तू इन्द्र होने की इच्छा न कर, देवता होने की इच्छा न कर, यक्ष और गंधर्व होने की इच्छा न कर। तू तो 'जो कुछ मेरा है सो आपका हो जाय ...' कर दे। तब तेरा पुण्य तेरा नहीं रहेगा, तेरा पाप तेरा नहीं रहेगा। जब पुण्य और पाप तेरा नहीं तब जीवभाव भी तेरा नहीं। जब जीवभाव तेरा नहीं तो जो 'मैं' हूँ सो तू हो जायेगा और जो तू है सो मैं हो जाऊँगा।"

बृहदश्व को उसके गुरु ने इन्द्रासन की लालच से बचाकर, इच्छापूर्ति की परेशानी से हटाकर इच्छा-निवृत्ति का उपदेश दिया और वह सत्पात्र शिष्य ने 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' उस परम् सत्ता के धाम में समाकर फिर वापस नहीं लौटना पड़े ऐसे आत्मज्ञान को पा लिया।

*

सुदामा जितेन्द्रिय सांदीपनि ऋषि के यहाँ पानी भरते, जंगल से लकड़ी और समिध ले आते। विद्याध्ययन समाप्त होने पर उन्होंने गुरुदेव से कहा : "गुरुदेव! मैं आपको गुरुदक्षिणा देना चाहता हूँ।"

सांदीपनि बोले : "बेटे! योग्य विद्यार्थी को मेरी विद्या सिखाना। मेरी विद्या का वंश बढ़ाना। यही मेरे लिए सब से बड़ी गुरुदक्षिणा है।"

*

ईश्वर की की हुई भक्ति कभी न कभी फल देती है, कभी व्यर्थ नहीं जाती।

महर्षि मुद्गल

कुरुक्षेत्र में महर्षि मुद्गल शिलोच्छ-वृत्ति से जीवन यापन करते थे। शिलोच्छ वृत्ति अर्थात् धन-धान्य कटे

खेत में बिखरे अन्न-कणों को चुन-चुनकर इकट्ठा करना।

महर्षि मुद्गल इस प्रकार एक द्रोण अन्न इकट्ठा करते थे। चौतीस सेर का एक द्रोण होता है। पंद्रह दिन में उस एकत्रित अन्न का उपयोग कर लेते थे। होम, हवन, यज्ञ-याग करके इतनी पवित्रता से वे जीते थे कि उनकी आहुतियों को ग्रहण करने के लिए देवताओं सहित इन्द्र भी उपस्थित हो जाते थे। वे ऐसे उत्कृष्ट महर्षि थे। अतिथि-सत्कार के प्रति वे बड़े ही निष्ठावान थे। अतिथि-सत्कार में उनकी कीर्ति देश-देशांतर, लोक-लोकांतर तक विख्यात थी।

महर्षि मुद्गल के पास एक बार दुर्वासा ऋषि का आगमन हुआ। दुर्वासा सदा भक्तों की कसौटी करते हुए उनकी भक्ति और यश अभिवृद्धि के लिए निमित्त ढूँढा करते थे। जैसे सुवर्ण को तपाया जाता है तो उसका विजातीय तत्त्व विनष्ट हो जाता है। वजन तो घटता है लेकिन किंमत बढ़ती है। ऐसे ही दुर्वासा जहाँ-जहाँ देखते कि कोई भक्ति में, योग में, साधन में आगे है तो उसकी कसौटी करके उसे परिशुद्ध बनाते और भक्ति, ज्ञान और तपस्या को निखार दिया करते। उनके अंतर में करुणा उमड़ती रहती थी, पर बाहर से क्रोधावेश की ज्वालाएं दिखाते। अभक्तों को एवं संसारियों को ईश्वर की एवं भक्तों की महिमा का प्रतिबोध देने के लिए ऐसी लीलाएँ किया करते थे।

दुर्वासा जहाँ-जहाँ देखते कि कोई भक्ति में, योग में, साधन में आगे है तो उसकी कसौटी करके उसे परिशुद्ध बनाते और भक्ति, ज्ञान और तपस्या को निखार दिया करते। उनके अंतर में करुणा उमड़ती रहती थी, पर बाहर से क्रोधावेश की ज्वालाएं दिखाते।

महर्षि मुद्गल यज्ञ करके भोजन की तैयारी में थे उसी समय दुर्वासाजी का आगमन हुआ। उन्होंने कहा :

"मुद्गल ! मैं भूखा और प्यासा हूँ। मेरे भोजन और जलपान की व्यवस्था कर।"

कटु तिक्त वचन, पागलों सा वेश, बिखरे बाल ... इस वेश-भूषा में दुर्वासा ऋषि डाँट, फटकार बताते हुऐ मुद्गल ऋषि के पास आये।

मुद्गल ऋषि ने बड़े ही स्नेह से उनके चरण पखारे, उन्हें भोजन कराया और शीतल जल पिलाया। पूरा परिवार जो अन्न पंद्रह दिन में खाकर परितृप्त होता वह सब दुर्वासा की प्रथम सेवा में समाप्त हो गया। पूरा परिवार भूखा रहा। पंद्रह दिन पश्चात् पुनः परीक्षा की घड़ी आयी। ३४ सेर अन्न इकट्ठा हुआ था। वे उससे अमावास्या और पूर्णिमा को यज्ञ किया करते थे। फिर से दुर्वासाजी पहुँच गये और पहले की भाँति ही सब अन्न खा-पीकर रवाना हो गये। इसी प्रकार वे छः छः बार आते रहे और मुद्गल के परिवार को विकट उपवास-व्रत के चपेट में डालते रहे। तीन महीने तक पूरा परिवार भूखा ही रहा। लेकिन दुर्वासा के इस कोप युक्त अनपेक्षित व्यवहार पर भी मुद्गल या उनकी पत्नी और बच्चों के चित्त में शोक, घृणा या साधु के प्रति कोई दुर्भाव उत्पन्न न हुआ। किसीके भी चित्त में अशांति नहीं, हृदय में क्षोभ नहीं। निष्काम सेवा से उनके चित्त में भूख और प्यास निवृत्त करने की एक रसायनी शक्ति उत्पन्न होने लगी। दुर्वासा हैरान हुए कि तीन-तीन महीने से यह परिवार भूखा है और मैं अपने बेढंगे आचरणों से उन्हें परेशानी में डालता रहा हूँ फिर भी इस परिवार में किसीका मन क्षुब्ध नहीं हुआ। किसीके भी चित्त में मेरे प्रति असम्मान पैदा नहीं हुआ।

"मुझे ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए कि जहाँ से फिर पतन हो। मुझे ऐसी कोई चीज नहीं चाहिए जिसको पाने के बाद फिर मुझे संसार में लौटना पड़े।"

दुर्वासा प्रसन्न हो गये और बोल उठे : "क्या चाहिए वत्स! बोलो?"

मुद्गल : "महाराज! आपकी प्रसन्नता ही हमारे लिए सब कुछ है।"

इतनी सेवा करने के पश्चात् भी महर्षि मुद्गल ने कुछ माँगा नहीं। विचार कीजिए कि कितनी निष्कामता रही होगी उनके विशुद्ध अंतःकरण में! दुर्वासा ऋषि उनसे प्रसन्न होकर वापस चले गये। दुर्वासा की प्रसन्नता से देवताओं को और भी अपार तसल्ली मिली।

देवताओं के राजा इन्द्र ने दूत भेजा कि आप सशरीर स्वर्ग में पधारें। अब मृत्युलोक में आपको रहने की कोई आवश्यक्ता नहीं।

महर्षि मुद्गल ने देवदूत से कहा कि : "पहले आप स्वर्ग में क्या-क्या सुख है और क्या-क्या दुःख है यह तो बता दीजिए। सात कदम जो एक दूसरे के साथ चलते हैं तो मित्र बन जाते हैं और सदा एक दूसरे का हित चाहते हैं। आप मेरे पास आये, मेरे लिए आये तो कृपा करके मुझे स्वर्ग का लाभ-हानि, सुख-दुःख क्या है यह तो बताइये।"

तब देवदूत ने कहा कि :

"वहाँ सोमपान करने को मिलता है। स्वर्ग में नंदनवन है, कामधेनु जैसी गौ है, अप्सराएँ सदैव सेवा में तत्पर रहती हैं।" आदि आदि सुख सुविधाओं का बयान देवदूत ने किया और आगे कहा कि :

"बड़े में बड़ा स्वर्ग का दोष यह है कि पुण्य खत्म होने पर आदमी को मृत्युलोक में गिराया जाता है, उसका पुनः पतन होता है।"

महर्षि मुद्गलने कहा : "मुझे ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए कि जहाँ से फिर पतन हो। मुझे ऐसी कोई चीज नहीं चाहिए जिसको पाने के बाद फिर मुझे संसार में लौटना पड़े।

यत्र गत्वा न शौचन्ति न व्यथन्ति चरन्ति वा ।
तदहं स्थानमन्यन्तं मार्गदिष्यामि केवलम् ॥

जहाँ जाने के बाद व्यथा नहीं होती, पतन नहीं होता उसी मार्ग को मैं पाना चाहता हूँ। मुद्गल ने कहा : "आप आये हैं, मुझे इन्द्रदेव ने आदर से बुलावा भेजा है ... सब को धन्यवाद! लेकिन मैं अपनी सेवा का पुरस्कार स्वर्ग नहीं चाहता ... ऐसा स्वर्ग जहाँ जाने के पश्चात् व्यथा और चिंता हो। मेरे लिए मेरे सेव्य की प्रसन्नता

ही मेरी सेवा का पुरस्कार है। आपको धन्यवाद ! आप जहाँ से आये हों, कृपया वहाँ जा सकते हैं।" और देवदूत को सम्मान सहित विदा दी।

महर्षि मुद्गल ने स्वर्ग का त्याग किया, पर उसका अहंकार तक उनके मन में नहीं जगा। ऐसे ही भगवान के जो सच्चे भक्त होते हैं, वे दुःख सहते हैं, कष्ट सहते हैं लेकिन मन में भी फरियाद नहीं करते क्योंकि अंतर में निष्कामता का रस सदैव उनकी रक्षा करता रहता है। जितनी ही जितनी निष्कामता अधिक होगी उतना ही परिशुद्ध आत्मरस उन में प्रकट होता रहेगा।

मन में द्रढ निश्चय एवं सद्भावना भरते चलो कि भगवद् सेवार्थ ही आज से सारे कर्त्तव्य कर्म करूँगा। वाहवाही के लिए नहीं, किसीको हल्का दिखाने के लिए नहीं, कोई नश्वर चीज पाने के लिए नहीं। जो भी करूँगा परमात्मा के प्रसाद का अधिकारी होने के लिए, परमात्मा को प्रेम करने के लिए, परमात्मा के दैवी कार्य सम्पन्न करने के लिए ही करूँगा।

अतः मन में द्रढ़ निश्चय एवं सद्भावना भरते चलो कि भगवद् सेवार्थ ही आज से सारे कर्त्तव्य कर्म करूँगा। वाहवाही के लिए नहीं, किसीको हल्का दिखाने के लिए नहीं, कोई नश्वर चीज पाने के लिए नहीं, जो भी करूँगा परमात्मा के प्रसाद का अधिकारी होने के लिए, परमात्मा को प्रेम करने के लिए, परमात्मा के दैवी कार्य सम्पन्न करने के लिए ही करूँगा। इस प्रकार परमात्मा और ईश्वर-सम्प्राप्त महापुरुषों के दैवी कार्यों में अपने आप को सहभागी बनाकर उस परमदेव के प्रसाद से अपने आप को पावन बनाता रहूँगा।

वैकुंठ में एक बार भगवान श्री नारायण अपने प्यारे निष्काम भक्तों से दिल्लगी कर रहे थे। बलि राजा, उद्धव, सात्यकि, कृतवर्मा आदि से दिल्लगी करते-करते भगवान नारायण ने बलि से पूछा कि: "पाँच स्वार्थी लोगों के साथ तुम्हें स्वर्ग में भेजा जाय अथवा पाँच निःस्वार्थी लोगों के साथ तुम्हें नरक में भेजा जाय, इन दोनों में से क्या पसंद है?"

जितना-जितना आदमी हृदय खोलकर ईमानदारी से भगवान के आगे रखता है, उतना-उतना सुखी होता है। जितना कपट उतना ही आदमी अशांत।

बलि कहते हैं कि : "प्रभु ! आपने अनूठा सवाल किया है। आपकी लीला अपरंपार है।

यह तो दीये जैसा स्पष्ट है कि स्वार्थी आदमी स्वर्ग में भी नरक बना देगा और निःस्वार्थी जहाँ पैर रखेगा वहाँ नरक भी स्वर्ग होने लगेगा।"

अनाश्रितः कर्मफलं
कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च
न निरग्निर्न चाक्रियः ॥

'जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेते हुए कर्त्तव्य कर्म करता है वही संन्यासी है और योगी है। मात्र अग्नि का त्याग करनेवाले संन्यासी नहीं, न क्रियाओं का त्याग करनेवाले योगी हैं।' (गीता : ६.१)

वह संन्यासी है, वह योगी है जो स्वार्थ रहित हो, अपने कर्त्तव्य का पालन करता हो।

'हेतु रहित जग जुग उपकारी ।'

भगवान अहेतुकी कृपा करते हैं। पृथ्वी अहेतुकी कृपा करती है, हमें धारण करती है, हम उसे बदले में क्या देंगे? पृथ्वी से लेंगे अन्न, फल और बदले में देंगे उसे मल-मूत्र। लेंगे गंगाजल, शुद्ध पानी और देंगे गंदा दूषित जल। फिर भी पृथ्वी माता हमें धारण किये जा रही है। कितनी निःस्वार्थता है इसमें !

जल हमारे काम आता है, तेज हमारे काम आता है, वायु हमारे काम आती है और चैतन्य स्वरूप ईश्वर भी तो हमारे सारे कार्यों में ओतप्रोत हैं। उन्हींकी सत्ता तो काम आती है। बीच में व्यक्ति अहंकार थोपता है कि मैंने किया।

निष्कामता से वह अहंकार गल जाता है तो परमात्मा प्रकट हो जाता है।

बलिराजा ने कहा कि : "पाँच निःस्वार्थी के साथ नरक मुझे अच्छा है। स्वार्थी आदमी के साथ स्वर्ग मेरे किसी काम का नहीं।"

ऐसा ही एक और प्रश्न एकबार भगवान ने बलि से पूछ लिया कि :

"पाँच बेवकूफों के साथ तुम्हें स्वर्ग भेज दिया जाय या पाँच बुद्धिमानों के साथ नरक में भेज दिया जाय, दोनों में क्या पसंद करोगे?"

बलि कोई साधारण भक्त नहीं थे। जिससे भगवान विनोद करते हैं, प्रश्न करते हैं वह कोई साधारण भक्त नहीं हो सकता। उसकी कोई सेवा है, योग्यता है या फिर भगवान का औदार्य है। निष्काम सेवक से सेव्य प्रश्न पूछे तो वह कहेगा कि भगवान की उदारता है, गुरु की उदारता है। निष्कामी अपनी योग्यता नहीं बतायेगा। अपने गुरुदेव की उदारता है ऐसा ही कहेगा। जबकि सकामी कहेगा : 'हम कोई जैसे तैसे नहीं हैं, हमें ही प्रश्न पूछा गया।'

किसीको प्रश्न पूछा जाय और वह लोगों को दिखाया करे कि 'देखो, मेरा प्रभाव कैसा है?' यह रजोगुणी है। रजोगुणी प्रभाव दिखाने की कोशिश करता है। सत्त्वगुणी अपना हृदय खोलकर भगवान और गुरु के आगे रख देता है। जितना-जितना आदमी हृदय खोलकर ईमानदारी से भगवान के आगे रखता है, उतना-उतना सुखी होता है। जितना कपट उतना ही आदमी अशांत।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

पाँच मूर्खों के साथ, कपटियों के साथ स्वर्ग अच्छा नहीं लेकिन पाँच सच्चे बुद्धिमान आदमियों के साथ नरक भी अच्छा है।

पाँच मूर्खों के साथ स्वर्ग भी नरक हो जायेगा और पाँच बुद्धिमानों के साथ नरक भी स्वर्ग हो जायेगा।

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो सांई को त्रास ।
सूरज जब गरमी करे, तब बरसन की आस ॥

सुनहली सीख

सोते समय सिर को पूर्व या दक्षिण की ओर ही करके सोना चाहिए। उत्तर की ओर सिर करके सोना वर्जित है। इस प्रकार सोने से बुरे-बुरे स्वप्न दिखते हैं और मनुष्य का आयुष्य क्षीण होता है।

जैसे दिशायंत्र की सुई उत्तर की ओर होती है तब स्थिर हो जाती है, उसी प्रकार मस्तक में जो धमनी नाड़ी है जो तालु में लपका करती है, वह जब दोनों ध्रुवों के बीच उत्तर में होती है तब ध्रुवयंत्र की सुई की भाँति ठहर जाती है। इसके ठहरने से मस्तक में रोग होते हैं, जो कभी-कभी भयानक होते हैं। इससे उत्तर की ओर सिर रखकर कभी नहीं सोना चाहिए।

* सोने से पहले आँखों में अंजन आँजना चाहिए। हाथ-पाँव धोकर और कुल्ला करके सोना चाहिए। इससे नींद गहरी आती है एवं स्वप्न नहीं दिखते।
* रात्रि को सोते समय और सुबह को उठते ही ताजे पानी से सदा मुँह धो डालें तो इससे मुख की कान्ति बनी रहेगी। मुख पर झुर्रियाँ नहीं पड़ेगी।
* सूर्योदय तक न सोयें। तारागण दिखते हों तब तक उठ जायँ। आँख खुलने के बाद फिर से न सोयें। इस प्रकार सोने से शक्ति का क्षय होता है।

थोड़ा-सा बासी (अगले दिन का मटके का) पानी पीकर मलत्याग कर आवें। इससे काया निरोग एवं चित्त प्रसन्न रहता है।

सदा रैन को सोई के, जो जागे बड़ भोर।
रहै निरोगी शरीर सों, गहै ज्ञान की डोर॥

पीपल में जान

सन् १९५७ से पहले की बात है। पिलखुआ गाँव में दलवीरखाँ नामक एक मुसलमान बढ़ई ने १०० रुपये में किसी राजपूत से एक हरा पीपल खरीदा। इस सौदे में इसाकखाँ नामक दूसरा बढ़ई हिस्सेदार था। दोनों ने

सोचा कि इसे काट-बेचकर जो आयेगा उसे बराबर भागों में दोनों बाँट लेंगे।

वृक्ष में जान होती है। कभी किसी कारण से ऊँची आत्माओं को वृक्ष की योनियों में भी आना पड़ता है। वे आत्माएँ समझदार और कार्यशील होती हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि : 'अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां .....।' वृक्षों में पीपल मैं हूँ ... मुनियों में कपिल मैं हूँ ... नक्षत्रों में चंद्रमा मैं हूँ।

दलवीरखाँ को पीपल की जीवात्मा ने स्वप्न दिखाया। पीपल कह रहा था : "तुम मेरे प्राण बचाओ। तुम मुझे काटनेवाले हो, मेरी मृत्यु होगी। तुमने मुझे १०० रुपये में खरीदा है और जो भी मुनाफा होगा वह सब बदले में मैं तुम्हें लौटा देता हूँ। मेरी जड़ में एक जगह तुम खोदोगे तो तुमको सोने की शलाका मिलेगी। उसे बेचकर तुम्हें जो मुनाफा होगा उससे तुम्हारा सारा खर्च निकल जायेगा। इसलिए कृपा करके मुझे कल काटना मत। मुझे प्राणों का दान देना।" दलवीरखाँ ने ऐसा स्वप्न देखा।

> "तुम मेरे प्राण बचाओ। तुम मुझे काटनेवाले हो, मेरी मृत्यु होगी। तुमने मुझे १०० रुपये में खरीदा है और जो भी मुनाफा होगा वह सब बदले में मैं तुम्हें लौटा देता हूँ।"

दलवीरखाँ को इस स्वप्न पर यकीन नहीं हुआ। फिर भी उसने उसे आजमाने के लिए पीपल की नींव में जहाँ स्वप्न में संकेत मिला था, खोदा तो सचमुच साने की एक शलाका निकल आयी। वह अपनी खुशी को सह न सका और बीबी को जाकर बता दिया। बीबी भी आश्चर्यचकित हो उठी। दलवीरखाँ ने सोचा कि यह बात यदि मेरे मित्र को बता दूँगा तो सोने की शलाका के आधे हक की वह माँग करने लगेगा।

वह मानवता से च्युत हुआ। आधा हिस्सा बचाने के लोभ में शलाका प्राप्ति की घटना को ही छुपाये रहा। जब इसाकखाँ उसके पास आया तब उसके साथ वह पीपल काटने के लिए चल पड़ा।

दलवीरखाँ ने मानवता को दूर रख दिया। निःस्वार्थता, लोभ रहितता एवं निष्कामता मनुष्य को देवत्व प्रदान करती है जबकि स्वार्थ और लोभ मनुष्य को मनुष्यता से हटाकर दानवता जैसी दुःखदायी योनियों में भटकाते हैं। जहाँ स्वार्थ है वहाँ आदमी असुर हो जाता है और जहाँ निष्कामता है वहाँ उसमें सुरत्व जाग उठता है। मनुष्य ऐसा प्राणी है जो चाहे तो सुर हो जाय, चाहे तो असुर बन जाय और चाहे तो सुर-असुर दोनों जिससे सिद्ध होते हैं उस सिद्ध स्वरूप को पाकर जीवन्मुक्त बन जाय। यह मनुष्य के हाथ की बात है। वह अपने ही कर्मों से भगवान की पूजा कर सकता है और अपने ही कर्मों से कुदरत का कोप-भाजन भी बन सकता है। अपने ही कर्मों से गुरुओं के अनुभव को अपना अनुभव बना सकता है और अपने ही कुकर्मों से दैत्य, दानव और शूकर की योनियों में भटकने का मार्ग पकड़ सकता है। मनुष्य पूर्णतः स्वतंत्र है।

निःस्वार्थता, लोभ रहितता एवं निष्कामता मनुष्य को देवत्व प्रदान करती है जबकि स्वार्थ और लोभ मनुष्य को मनुष्यता से हटाकर दानवता जैसी दुःखदायी योनियों में भटकाते हैं।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करे सो तस फल चाखा॥

पहले नियम था कि जो हरा वृक्ष काटना चाहे वह पहले गुड़ बाँटे। साथ में दो चार और भी साथी हो गये। सब को गुड़ बाँटा। ज्यों ही पीपल पर कुल्हाड़ा चला तो लोगों ने देखा कि पीपल में से खून की धारा फूट निकली। सब हैरान हुए कि वृक्ष में से खून की धारा! फिर भी दलवीरखाँ लोभ के अंधेपन में यह नहीं समझ पा रहा है कि रात को उसने मुझसे प्राणदान माँगा था। यह कोई साधारण वृक्ष नहीं है और उसने मुझे सुवर्ण के रूप में बदला भी चुका दिया है।

ज्यों ही पीपल पर कुल्हाड़ा चला तो लोगों ने देखा कि पीपल में से खून की धारा फूट निकली। सब हैरान हुए कि वृक्ष में से खून की धारा!

निःस्वार्थता से आदमी की अंदर की आँखें खुलती हैं जबकि स्वार्थ से आदमी की विवेक की आँखें मुँद जाती हैं, वह अँधा हो जाता है। रजोगुणी या तमोगुणी आदमी का विवेक क्षीण हो जाता है और सत्त्वगुणी का विवेक, वैराग्य एवं मोक्ष का प्रसाद अपने आप बढ़ने लगता है। आदमी जितना ही निःस्वार्थ कार्य करता है उतना ही उसके अपने संपर्क में आनेवालों का हित होता है। जितना स्वार्थी होता है उतना ही वह अपनी और अपने कुटुम्बियों की बरबादी करता है। जो पिता निःस्वार्थ भाव से संतों की सेवा करता है और यदि संत कोई उच्च कोटि के होते हैं और शिष्य की सेवा स्वीकार कर लेते हैं तो फिर उसके पुत्र-कलत्र सभी को भगवान की भक्ति का सुफल सुलभ हो जाता है। भक्ति का फल प्राप्त कर लेना हँसी खेल नहीं है।

भगवान के पास एक योगी पहुँचा। उसने कहा : "भगवान! मुझे भक्ति दो।"

भगवान : "मैं तुम्हें रिद्धि सिद्धि दे दूँ। तुम चाहो तो तुम्हें पृथ्वी के कुछ हिस्से का राज्य ही सौंप दूँ मगर मुझसे भक्ति मत माँगो।"

योगी : "आप सब देने को तैयार हो और अपनी भक्ति नहीं देते हो, आखिर ऐसा क्यों?"

भगवान : "भक्ति देने के बाद मुझे भक्त के पीछे-पीछे घूमना पड़ता है। निष्काम कर्म करनेवाले व्यक्तियों के कर्म भगवान या संत स्वीकार कर लेते हैं तो उसके बदले में उसके कुल को भक्ति मिलती है। जिसके कुल को

भक्ति मिलती है उसकी बराबरी धनवान भी नहीं कर सकता। सत्तावाला भला उसकी क्या बराबरी करेगा? जो निष्काम सेवा करता है उसे ही भक्ति मिलती है। जैसे, हनुमानजी को भक्ति मिली। हनुमानजी रामजी से कह सकते थे कि : "महाराज! हम तो ब्रह्मचारी हैं। हमको योग, ध्यान या अन्य कोई भी मंत्र दे दीजिये, हम जपा करें। औरत आपकी खो गयी, असुर ले गये, हम क्यों प्राणों की बाजी लगायें?" ऐसा तो हनुमानजी कह सकते थे। मगर हनुमानजी में ऐसी दुर्बुद्धि या स्वार्थवृत्ति नहीं थी। हनुमानजी ने तो भगवान राम के काम को अपना काम बना लिया। इसलिए प्रायः गाया जाता है 'राम लक्ष्मण जानकी ... जय बोलो हनुमान की।'

निःस्वार्थता से आदमी की अंदर की आँखें खुलती हैं जबकि स्वार्थ से आदमी की विवेक की आँखें मुँद जाती हैं, वह अँधा हो जाता है। रजोगुणी या तमोगुणी आदमी का विवेक क्षीण हो जाता है और सत्त्वगुणी का विवेक, वैराग्य एवं मोक्ष का प्रसाद अपने आप बढ़ने लगता है।

आज का शिक्षित आदमी तो यही कहता : "बोस! तुम्हारी पत्नी चली गयी? दूसरी कर लो। यह तो होता ही रहता है। जो हुआ विधि का लेख मान लो। असुरों से लड़ने की क्या जरूरत? अगर लड़ना ही है तो आप दोनों लड़ें। मुझ सीधे-सादे ब्रह्मचारी को बीच में क्यों घसीटते हो? मुझे तो यह आशीर्वाद करो कि मैं आपकी भक्ति करूँ और तर जाउँ।" यह तो हुआ स्वार्थ। 'मैं तर जाऊँ ...' ऐसा हनुमानजी ने नहीं माँगा।

निष्काम कर्म करनेवाला समझता है कि जो भी काम उसने अपने सिर लिया है उसे पूरा करने में चाहे कितने ही विघ्न आ जायँ, कितनी ही बाधाएँ आ जायँ, निंदा हो या संघर्ष पर वह उसे पूरा करके ही चैन लेता है।

रामायण का ही प्रसंग है जिसमें मैनाक पर्वत सिंधु के बीचोबीच प्रकट होता है और हनुमानजी से कहता है : "हे अतिथि! यहाँ आराम करो।"

पर थके हुए हनुमानजी उसके प्रस्ताव से प्रसन्न नहीं होते। वे कहते हैं :

'राम काज कीन बिनु
मोहिं कहाँ विश्राम।'

निष्काम कर्म करनेवाला समझता है कि जो भी काम उसने अपने सिर लिया है उसे पूरा करने में चाहे कितने ही विघ्न आ जायँ, कितनी ही बाधाएँ आ जायँ, निंदा हो या संघर्ष, पर वह उसे पूरा करके ही चैन लेता है।

निष्काम कर्म करनेवाले की अपनी अनूठी रीति होती है, शैली होती है।

दलवीरखाँ स्वार्थ से इतना अँधा हो गया था कि रक्त की धार देखकर भी उसे भान नहीं आया कि मैं क्या कर रहा हूँ। उसने तो कुल्हाड़े पर कुल्हाड़ा चलाना जारी रखा।

जो स्वार्थांध बन जुल्मों सितम ढाता है उसे प्रकृति तत्क्षण परिणाम भी दे देती है।

ज्यों-ज्यों वह उस निर्दोष वृक्ष पर कुल्हाड़े मारता गया त्यों-त्यों उसका स्वस्थ सुंदर युवान बेटा जिसके नाखून में भी रोग या बीमारी का नामोनिशान नहीं था वह यकायक आंतरिक पीड़ा से कराहते हुए अंत में गिर पड़ा। उधर पीपल में से रक्त की धार निकली, इधर बेटे के शरीर से रक्त प्रवाहित हो चला। उधर वृक्ष का कटना था इधर दलवीरखाँ की आँखों का तारा उसके बेटे का अंत हो गया। शाम को जब दलवीरखाँ घर आया तब घर पर गाँव के समस्त लोगों को इकट्ठे शोकमग्न देखा। दलवीरखाँ को देख उसकी पत्नी चिल्ला उठी : "बेटे! तेरा हत्यारा तो स्वयं तेरा यह बाप है।"

उसने सारा भंडा फोड़ते हुए कह दिया : "रात को पीपल का संकेत मिला था। शलाका भी मिली थी और वह निर्दोष वृक्ष प्राणदान माँग रहा था। इस हत्यारे ने लोभ और स्वार्थ में पड़कर शलाका तो ले ली। जो सौ रुपये खरीदने में लगाये थे, स्वर्ण-शलाका से उसे उससे भी अधिक द्रव्य मिल गया था। फिर भी उसने उस पीपल के साथ अन्याय किया। कुदरत ने उसी अन्याय का बदला चुकाया है। ज्यों ही पीपल को काटा त्यों ही मेरे बेटे के बदन से खून की धार निकल चली। हे मेरे अंध स्वार्थी पति! तुमने ही अपने बेटे का खून किया है।" और वह फूट-फूट कर रुदन करने लगी।

उधर पीपल में से रक्त की धार निकली, इधर बेटे के शरीर से रक्त प्रवाहित हो चला। उधर वृक्ष का कटना था इधर दलवीरखाँ की आँखों का तारा उसके बेटे का अंत हो गया।

प्रायः स्वार्थ में अंधा होकर आदमी कुकर्म कर बैठता है और जब उसे उसका फल मिलता है तब वह पछताता है मगर बाद में पश्चात्ताप से क्या लाभ? जो लोग स्वार्थ भाव का त्याग कर ईश्वर-प्रीति के वशीभूत हो कार्य करते हैं, वाह-वाही को छोड़ भगवान् को रिझाने के लिए कार्य करते हैं वे तर जाते हैं। शत्रु को हल्का दिखाने के लिए द्वेषी काम करते हैं। वाह-वाही पाने के लिए लोभी काम करते दिखते हैं। समाज की झूठी वाह-वाही के लिए भी कितने ही अहंकारी काम में परेशान रहते हैं लेकिन इनमें से जो भगवान को प्रसन्न करने के लिए काम करते हैं वे निष्काम कर्म करनेवाले धन्य हो जाते हैं।

'ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

'हे अर्जुन! शरीररूपी यन्त्र पर आरूढ हुए सब प्राणियों को अंतर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।'

(गीता : १८.६१)

ईश्वर सबके हृदय में बैठा है। जैसे विद्युत का करंट मोटर में जाता है। प्रत्येक स्पेरपार्ट जो कि मशीन में घूम रहा होता है उसमें जो आन्दोलन होता है वह विद्युत का ही प्रसाद है। विद्युत को कोई देखता नहीं। मशीन को देखता है मोटर को घूमते हुए देखता है लेकिन घुमानेवाले तत्त्व को आदमी आँख से नहीं देख सकता। फिर भी घुमानेवाला तत्त्व ही सब काम करता है। ऐसे ही अपने हृदय, इन्द्रिय, मन को, तन को सबको शक्ति देनेवाला परमात्मा सब कुछ देख रहा है। तुम बुरे काम करो तो लोग चाहे उस समय तुम्हें न फटकारें पर अंतर्यामी तो देख रहा है न! देर सबेर तुम्हें उसका फल अवश्य देता है।

*

व्यासजी कहते हैं : "बेटा ! वेद का सार है सत्य वचन। सत्य का सार है इन्द्रियों का संयम। संयम का सार है दान और दान का सार है तपस्या। तपस्या का सार है त्याग। त्याग का सार है सुख। सुख का सार है स्वर्ग और स्वर्ग का सार है शांति ...। अतः मनुष्य को संतोषपूर्वक रहकर शांति के उत्तम उपाय सत्त्वगुण को अपनाने की कामना करनी चाहिए।"

[महाभारत ० / शांतिपर्व-मोक्षधर्मपर्व-अ.-२५१]

हंस ने कहा : "जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर सदा सब प्रकार से परमात्मा में लगे रहते हैं वह वेदाध्ययन, तप और त्याग इन सबके फल को पा लेता है। क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करता है, दान देता है, तप करता है अथवा जो हवन करता है उसके उन सब कर्मों के फल को यमराज हर लेते हैं। क्रोध करनेवाले का वह किया हुआ सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है। अतः क्रोधाग्नि से अपनेको सदैव बचायें।"

[महाभारत ० शांतिपर्व - मोक्षधर्मपर्व अ.-२९९ श्लोक २४ और २७]

१. परमात्मा की अनुभूति कहाँ?

हाथों में थाल लिये स्वामी रामदास के पास एक शिष्य आया। उसमें बूंदी के लड्डू थे। उसने वह थाल गुरुजी के चरणों में रख दी। उसकी आँखें दिखा रही थीं कि मन में एक प्रश्न घुल रहा है। स्वामी रामदास समझ गये। बोले :

"वत्स ! तू कुछ पूछना चाहता है क्या? तेरी आँखें वैसा ही संकेत दे रही हैं।"

उस शिष्य में सेवाभाव था। सेवाभाव से साधक के हृदय में 'आत्मा क्या है ... परमात्मा क्या है ... हम कर्म करनेवाले कौन हैं ...' इस प्रकार के दिव्य प्रश्न अपने आप उत्पन्न होते हैं। उनका समाधान भी अनेकों बार अपने आप आता है। या फिर गुरुओं के चरणों में समाधान पाने की योग्यता भी आ जाती है। प्रश्न कब करना, कैसे करना यह भी एक सात्त्विक योग्यता है।

उस शिष्य में सेवाभाव था। सेवाभाव से साधक के हृदय में 'आत्मा क्या है... परमात्मा क्या है... हम कर्म करनेवाले कौन हैं...' इस प्रकार के दिव्य प्रश्न अपने आप उत्पन्न होते हैं।

रामदास स्वामी ने पूछा : "बेटा ! क्या पूछना चाहता है?"

शिष्य बोला : "गुरुजी ! भगवान सर्वत्र हैं, सदा हैं और सबमें हैं फिर भी दिखते तो नहीं हैं। यह सवाल बहुत दिनों से सताता है।"

स्वामीजी ने दो चार लड्डू अलगकर एक थाल में उसका चूरा कर दिया। पूरे थाल में बूंदी बूंदी फैला दी।

रामदासजी ने पूछा : "बूंदी पूरे थाल में भरी है। एक एक दाना अलग हो गया, लड्डू में से बूंदी हो गई। बूंदी मिल जाती है तो लड्डू हो जाता है। लड्डू बिखर जाता है तो बूंदी रह जाती है। तो बताओ, इस दाने में मिठास है कि नहीं?"

शिष्य : "गुरुजी ! है।"

गुरुजी : "अगर वह लड्डू बन जाय तो?"

शिष्य : "तब भी मिठास है।"

गुरुजी : "मिठास दिखती तो नहीं है?"

शिष्य : "गुरुजी दिखती नहीं है फिर भी इसमें है, यह अनुभव में आता है।"

गुरुजी : "बेटा ! ऐसे ही परमात्मा सत् है, चेतन है यह तो बुद्धिपूर्वक दिखता है लेकिन आनंद स्वरूप की मिठास तो हृदय में अनुभव से आती है। जितना हृदय में निष्काम भाव से भरकर कर्म होता है उतना उस आत्मा का आनंद अपने ही दिल में छलकता है, खुद के अनुभव में आता है।"

*

सत्संग सरिता

२. 'गुरु बिन मिटे न भेद ...।'

चाहे जितनी भी ऊँचाई पर बढ़ जाओ मगर अंतःकरण में जब तक विभेद रहेगा तब तक मुक्ति का अनुभव संभव नहीं, मोक्ष का सुख सुलभ नहीं हो सकता।

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिटे न भेद।

गुरु के बिना भेद मिटता नहीं और बिना भेद मिटे भय का जाना संभव नहीं। संशय का मिटना कठिन है। भेद मिटने पर ही भय और संशय का उन्मूलन हो सकता है।

अपनी अखण्डता और पूर्णता का ज्ञान गुरु के बिना जगता नहीं। देवता आ जाय और मनोवांछित फल भी दे दे मगर अखण्ड ज्ञान का उपदेश देकर विभेद मिटाने का काम तो सद्गुरु ही कर सकते हैं।

एक शिष्य ने गुरु का पैर पकड़ अनुनय से कहा

कि : "गुरु महाराज ! कृपा कीजिए। मैंने सुना है कि मैं ब्रह्म हूँ लेकिन लगता है कि ब्रह्म परमात्मा तो सर्वत्र है, सर्व शक्तिमान है, सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से रहित है, जबकि मैं हूँ मगन। मैं छगन कुम्हार का बेटा हूँ, मोहन का चाचा हूँ और चीमनभाई का भतीजा हूँ।"

गुरु : "चल, बड़ा आया। ब्रह्मज्ञान पाना है ?"

शिष्य : "हाँ गुरुजी !"

गुरु : "तो जरा पानी तो पिलाओ। जाओ गंगाजी से लोटा भरके लाओ।"

शिष्य ने उत्साहसहित लोटा माँजा और गंगा में से पानी भरकर गुरु के सामने रख दिया।

गुरुजी पानी में उँगली घुमाते हुए कह उठे कि : "यह गंगाजल कहाँ है ? गंगाजल में तो बालू के कण बहते हैं, मछलियाँ नाचती हैं, कछुए होते हैं, झाग, बुलबुले और तरंगें उठती हैं। इसमें तो कुछ भी नहीं है। फिर यह गंगाजल कैसे ?"

अपनी अखण्डता और पूर्णता का ज्ञान गुरु के बिना जगता नहीं। देवता आ जाय और मनोवांछित फल भी दे दे मगर अखण्ड ज्ञान का उपदेश देकर विभेद मिटाने का काम तो सद्गुरु ही कर सकते हैं।

शिष्य बोला : "गुरुजी ! वह गंगाजी का पट बड़ा लम्बा-चौड़ा है, उसको छोड़ो और लोटे के छोटेपन को छोड़ो। आपके चरणों की सौगंद खाकर बोलता हूँ कि जो गंगाजी में बह रहा है वही गंगाजल इस लोटे में भी है।"

गुरु : "वैसे ही मैं भी तुझे कहता हूँ कि ईश्वर को, उसकी शक्ति को, उसकी आकृति को छोड़ दे और अपनी यह आकृति भी छोड़ दे। मैं भी तेरी सौगंद खाकर कहता हूँ कि तूं वही ब्रह्म है। जो चैतन्य ईश्वर में है वही चैतन्य तुझमें भी है। माया को वश में रखनेवाला चैतन्य ईश्वर कहा जाता है। अविद्या का वशीभूत जीव कहलाता है। तत्त्व से तू वही है, अखण्ड ब्रह्म .. एक रस ब्रह्म।"

कर्ता की अपेक्षा कार्य में भेद दिखता है, कारण में भेद नहीं है। .. और वह भेद दिखने भर को है, वास्तव में नहीं है। जैसे फिल्म जगत में आप देखते हैं कि एक ही लाइट है वह प्लास्टिक की पट्टियों पर पड़ती है तब अनेक स्वरूप उमड़ते हैं। कोई मोटरगाड़ी भाग रही है, रेलगाड़ी चली जा रही है, कोई अबला पकड़ी जा रही है, पीपल के पेड़ को आग लगायी जा रही है। देखोगे तो आग भी वही, पीपल का पेड़ भी वही, महिला और रेल भी वही। सब लाइट का ही चमत्कार है। एक लाइट ही अनेकानेक रूपरंगो में दिख रही है।

गाँधीजी का सूत से निर्मित एक चित्र है। उसमें हाथमें डण्डा दिखाया गया है, चश्मा पहनाया गया है, कमर थोड़ी झुकी दिखायी गयी है। .. तो सूत के बने गाँधीजी का चश्मा भी सूत है, डण्डा भी सूत है, चप्पल, किताब, धोती सब सूत ही सूत है। भेद दिखने भर को है, बाकी सूत ही तो है।

ऐसे ही शक्कर से खिलौने, फूल, और मूर्तियाँ बनती हैं उनमें अनेकानेक रूपों, रंग होते हैं। कहने को आकृति अनेक हैं परंतु सभी में शक्कर तत्त्व एक ही है। जिसकी शक्कर पर नजर है उसको भेद दिखते हुए भी अभेद ही दृष्टिगोचर होगा।

उडिया बाबा ने एकबार अपने शिष्य से कहा था कि : "बेटा ! जब तक बालू का कण-कण ब्रह्ममय न दिखे तब तक तुम्हें ब्रह्मज्ञान हुआ ऐसा मत मानना।"

*

३. सेवाधर्म

एकबार स्कूल की छुट्टी हुई। लड़के घर की ओर जा रहे थे। एक लड़के ने देखा कि एक बीमार व्यक्ति सड़क के किनारे रुग्ण अवस्था में पड़ा पड़ा छटपटा रहा है। सब लड़के उसकी हँसी ऊड़ाते हुये अपने-अपने रास्ते चले गये।

वह लड़का रुक गया। इस अनाथ, दीन और दु:खी

को देखकर उसका हृदय भर गया।

उसने पूछा : "क्या चाहिए?"

बीमार ने कहा : "प्यासा भर रहा हूँ ... । पानी चाहिए ... ।"

लड़के ने पाँच-पचीस कदम दूर कोई मकान था वहाँ से पानी लाकर उस सड़क पर पड़े आदमी को पिला दिया और ग्लास वापस देकर फिर अपने घर पहुँचा।

शाम के समय वह लड़का कोई पाठ पढ़ता हुआ पिता के समीप बेठा था। इतने में कोई पड़ौसी आया और बोला : "आज अमुक चौराहे पर एक बीमार आदमी लावारिस पड़ा था, चार बजे उसकी मृत्यु हो गई।"

लड़के ने कहा : "उस चौराहे पर तो मुझसे एक बीमार ने पानी माँगा था पिताजी! मैंने उसको पानी पिला दिया था।"

पिता ने कुछ रुष्ट स्वर में कहा : "बस, केवल उसे पानी देकर चला आया? जब वह बीमार था, लावारिस था तो उसे अस्पताल में क्यों भरती नहीं करा दिया?"

लड़का बोला : "मैं इतना छोटा लड़का, उसे कैसे भरती करा सकता था?"

पिता ने कहा : "तू नहीं करा सकता था तो पुलिस को कहता, दूसरे किसी बड़े आदमी को कहता या मुझे कहता। तू किसी दुखियारे मनुष्य को देखकर घर भाग आया फिर तो पशु में और तुझमें क्या फर्क है? अभी से ही निष्काम कर्म करने की आदत डाल।"

अपने दुःख में तो सब रोते हैं। दूसरों के दुःख को जो अपना दुःख नहीं समझता उसका दुःख भी दूर नहीं होता। जब तक दूसरे के सुख को अपना सुख नहीं समझता तब तक अपने हृदय में सुख स्वरूप हरि प्रगट नहीं होते।

अपने दुःख में रोनेवाले मुस्कुराना सीख ले ।
दूसरों के दुःख दर्द में तू आँसू बहाना सीख ले ॥

अपने दुःख में तो सब रोते हैं। दूसरों के दुःख को जो अपना दुःख नहीं समझता उसका दुःख भी दूर नहीं होता। जब तक दूसरे के सुख को अपना सुख नहीं समझता तब तक अपने हृदय में सुख स्वरूप हरि प्रगट नहीं होते।

*

प्र० साधक को किन नियमों का पालन करना चाहिए?

उ० मिताहार, मितनिद्रा और मितभाषण। खाने, सोने और बोलने में कभी भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

प्र० कितने काल तक साधना आवश्यक है?

उ० बिना किसी प्रयत्न के और सहज रीति से मन वृत्तिरहित दशा प्राप्त करे तब तक अथवा अहंकार और ममता का संपूर्ण रूप में नाश हो तबतक साधना आवश्यक है।

प्र० यदि सभी प्रारब्ध के अनुसार ही चलते हों तो ध्यान के मार्ग में आनेवाले विघ्नों को कैसे दूर कर सकते हैं?

उ० जो प्रारब्ध कहलाता है वह बहिर्मुख मन को ही अटकाता है, अंतर्मुख मन को नहीं। स्व-स्वरूप आत्मा का अनुसंधान करनेवाले साधक किसी भी प्रकार के विघ्नों से नहीं डरते। विघ्नों का विचार ही सबसे बड़ा विघ्न है।

('तत्त्वबोध' : रमण महर्षि के साथ प्रश्नोत्तर)

हमारे 'ऋषि प्रसाद' मेगजीन को गुजरात राज्य सरकार की ओर से कानूनी तौर पर स्वीकृति मिली है। ग्रंथालय नियामक की कचहरी, गुजरात राज्य, राज्य ग्रंथालय भवन, गांधीनगर से गुजरात भर के तमाम ग्रंथालयों को 'ऋषि प्रसाद' मेगजीन ग्रंथालय में रखने के लिए परिपत्र भेजा गया है। समाज में संस्कार सिंचन करने के लिए सरकार ने उठाया हुआ यह कदम अत्यंत सराहनीय है।

ક્રમાંક/ગ-૩/પુસા.૯/૯૧-૯૨/૨૯૪૭-૩૦૨૨
ગ્રંથાલય નિયામકની કચરી,
ગુજરાત રાજ્ય,
રાજ્ય ગ્રંથાલય ભવન, સેકટર-૧૭,
ગાંધીનગર. તા. ૨૨-૬-૯૧

પરિપત્ર :-

સંતશ્રી આશારામજી આશ્રમ સંચાલિત શ્રી યોગવેદાંત સેવા સમિતિ, અમદાવાદ દ્વારા પ્રકાશિત દ્વિમાસિક સામાયિક 'ઋષિપ્રસાદ' માં સહજ અને સરળ શૈલીમાં ચારિત્ર્ય ઘડતરના પાઠો રજૂ કરવામાં આવેલ . છે. આજના વિસંવાદિતાના કાળમાં સમાજને દેશ્વેઠા સનાતન ધર્મની દિવ્યવાણી વાંચવા-વાગોળવાં મળે તે અત્યંત જરુરી છે સમગ્ર સમાજ માટે ઉક્ત સાહિત્યનું વાંચન-મનન અત્યંત ઉપયોગી નીવડશે જીવનના સર્વાંગી વિકાસ માટેની અનુપમ સામગ્રીનો સમાવેશ' ઋષિપ્રસાદમાં કરવામાં આવેલ છે. જેનું વાર્ષિક લવાજમ રુા.૨૦/- છે.

ઉક્ત સામાયિક આપના ગ્રંથાલયોમાં વસાવવા માટે ભલામણ કરવામાં આવે છે. આ અંગેનો ખર્ચ ચાલુ વર્ષની મંજૂરરહેલ ગ્રાન્ટમાંથી કરવાનો રહેશે.

[signature]
ગ્રંથાલય નિયામક,
ગુ.રાજ્ય, ગાંધીનગર.

પ્રતિ,
- રાજ્ય ગ્રંથપાલશ્રી, ગાંધીનગર/વડોદરા.
- મદદનીશ ગ્રંથાલય નિયામકશ્રી ' તમામ'
- આપના હસ્તકના અનુદાન લેતાં ગ્રંથાલયોને જાણ કરવાની સૂચના સાથે
-સરકારી જિલ્લા/તાલુકા પુસ્તકાલય ' તમામ'

- નકલ રવાના જાણ સારું :-

પ્રતિ,
શ્રી યોગ વેદાંત સેવા સમિતિ,
સંતશ્રી આશારામજી આશ્રમ
સાબરમતી આશ્રમ અમદાવાદ-૩૮૦૦૦૫.

योगलीला

गुरु चरण रज शीष धरि हृदय रूप विचार; श्री आसारामायण कहौं, वेदान्त को सार.
धर्म कामार्थ मोक्ष दे रोग शोक संहार; भजे जो भक्ति भाव से, शीघ्र हो बेड़ा पार.

अखण्ड भारतवर्ष के सिंध प्रान्त के नवाबशाह जनपद के बेराणी ग्राम में वि. संवत् १९९८, चैत्र वदी षष्टमी को कोटि-कोटि जगज्जीवों का समुद्धारक एक दिव्य तेजस्वी नक्षत्र नभोमण्डल में से अवनि पर अवतरित हुआ। इसके पिता होने का सौभाग्य गाँव के नगरसेठ श्री थाउमल सिरुमलानी को प्राप्त हुआ। माँ महँगीबा के कोख से इस दिव्य नक्षत्र ने स्वरूप ग्रहण किया। इसका नाम रखा गया आसुमल।
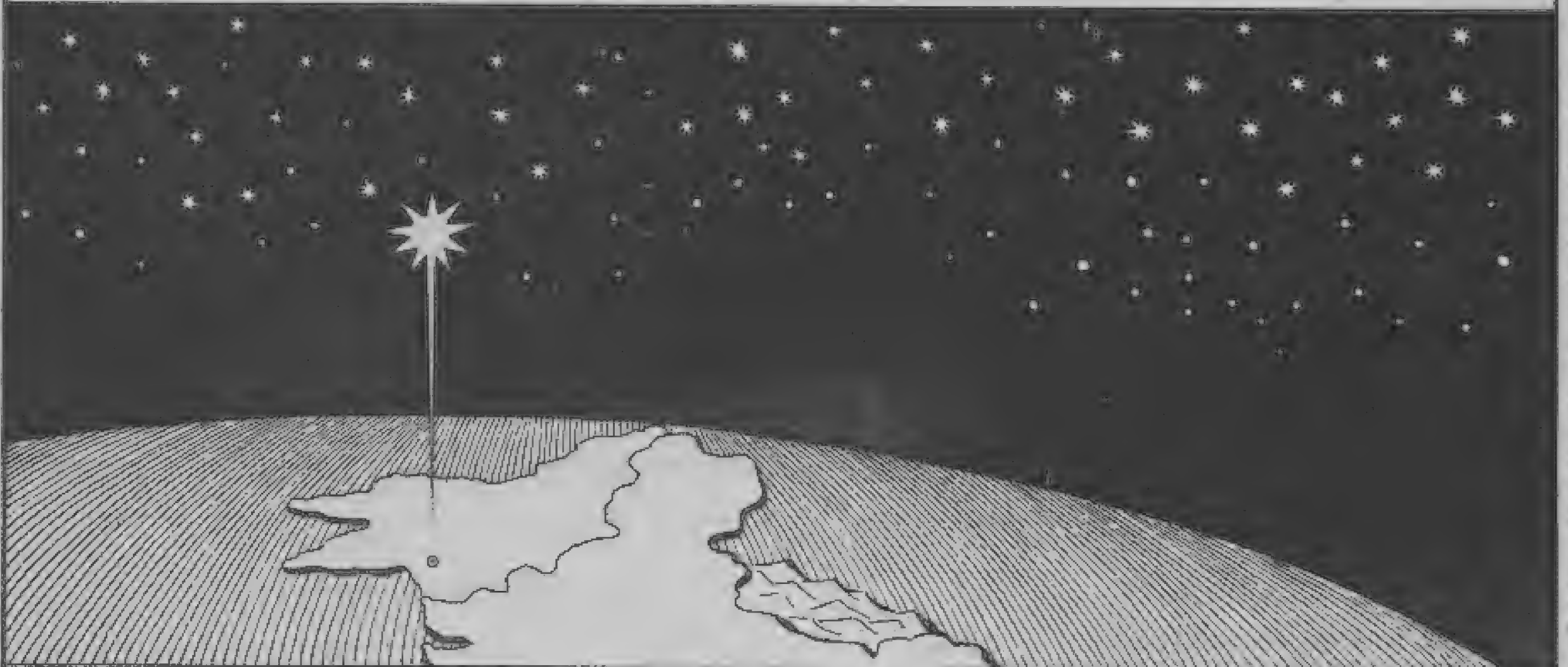
भारत सिंधु नदी बखानी, नवाब जिले में गाँव बेराणी; रहता एक सेठ गुण खानि, नाम थाऊमल सिरुमलानी.
आज्ञा में रहती मेंहगीबा, पति परायण नाम मंगीबा; चैत वद छः उन्नीस अठानवे, आसुमल अवतरित आँगने.

जन्म के दिन श्री थाउमल सेठ के यहाँ एक सौदागर का आगमन हुआ ।

माँ मन में उमड़ा सुख सागर, द्वार पै आया एक सौदागर; लाया एक अति सुन्दर झूला, देख पिता मन हर्ष से फूला.
सभी चकित ईश्वर की माया, उचित समय पर कैसे आया; ईश्वर की ये लीला भारी, बालक है कोई चमत्कारी.

औदार्य-उदधि श्री थाउमलजी के यहाँ प्रतिदिन याचकों और भिक्षुकों की पंक्तियाँ जुटने लगीं ।

सन्त सेवा औ' श्रुति श्रवण, मात पिता उपकारी; धर्म पुरुष जन्मा कोई, पुण्यों का फल भारी.

महँगीबा बालक आसुमल को पालने में झुलाती हुई बैठी हैं । पड़ोसी स्त्रियाँ बातें करती हैं :

(क्रमशः)

सूरत थी बालक की सलोनी, आते ही कर दी अनहोनी; समाज में थी मान्यता जैसी, प्रचलित एक कहावत ऐसी.
तीन बहन के बाद जो आता, पुत्र वह त्रेखण कहलाता; होता अशुभ अमंगलकारी, दरिद्रता लाता है भारी.
विपरीत किंतु दिया दिखाई, घर में जैसे लक्ष्मी आई; तिरलोकी का आसन डोला, कुबेर ने भंडार ही खोला.
मान प्रतिष्ठा और बड़ाई, सबके मन सुख शांति छाई;

वर्षा, शरद और हेमंत इन तीन ऋतुओं को मिलाकर दक्षिणायन कहा जाता है। मेघ की वृष्टि एवं ठंडी हवाओं के स्पर्श से पृथ्वी का ऊपरी स्तर ठंडा हो जाता है। इस काल में सौम्यता के कारण चन्द्र अधिक प्रबल हो जाता है। सूर्य का तेज क्षीण होता है। खट्टे, क्षार और मीठे रस शक्तिमान होते हैं।

ग्रीष्मऋतु के कारण शरीर का बल क्रमशः क्षीण होता चलता है। इससे अग्नि भी मंद होती है। वर्षा काल में वात, पित्त और कफ तीनों के दूषित होने से अग्नि विशेष मंद पड़ जाती है। आकाश में नमीयुक्त बादल छाये रहते हैं। इससे नमीयुक्त ठंडी हवाएँ चलती रहती हैं। हवा में बाष्प होने के कारण अन्न पान में खटास आ जाती है। पानी भी प्रदूषित और खनीज द्रव्ययुक्त बन जाता है। जठराग्नि मंद होने से वर्षाऋतु में दोष का प्रकोप हो आता है। खुराक ठीक से हजम नहीं होता और बारम्बार बिमारी आ धमकती है। उससे बचने के लिए संभव हो तो वर्षाऋतु में एक ही समय भोजन लेने का क्रम जारी रखना चाहिए।

पुराने अन्न, मधुर, स्निग्ध एवं हल्के भोजन ही ग्रहण करना चाहिए। खट्टे-मीठे फल, नींबू एवं अदरक का रस भी नियमित लेना चाहिए। साथ ही उबला हुआ ठंडा जल पीना चाहिए। इससे पित्त का संचय एवं प्रकोप होने की आशंका नहीं रहती।

नदी का पानी, पानी में घुला हुआ सत्तू, दिन की नींद, ज्यादा मेहनत एवं धूप ये पाँचों चीजें वर्षाऋतु में त्यागने योग्य हैं।

जामुन

जामुन वर्षाऋतु का फल है। वह दीपक, पाचक, यकृत उत्तेजक एवं स्तंभक है। इसे सदैव भोजन के पश्चात् ही खाना चाहिए। वायु प्रकृतिवाले एवं वात पीड़ितों को जामुन नहीं खाना चाहिए क्योंकि वह अतिशय वात-दोषकारक है। शरीर में यदि सूजन हो, वमनवाला रोगी हो, प्रसूता हो या लम्बे समय का उपवासी हो तो उसे जामुन खिलाना ठीक नहीं है। बिना नमक के कभी भी जामुन नहीं खाना चाहिए। अगर ज्यादा जामुन खाया गया हो तो तदुपरांत नमक मिश्रित छाछ पीनी चाहिए।

आम अगर ज्यादा खा लिये गये हों तो उसका अजीर्ण जामुन के सेवन से मिट जाता है।

जामुन के पेड़ की जड़ों को चावल के पानी में घिसकर एक-एक चमच सुबह-शाम देने से स्त्रियों का पुराना प्रदर मिटता है।

लम्बे समय तक जामुन खाते रहने से पेट में निगले गये बाल एवं लोह कण गल जाते हैं।

जामुन की गुठली को पानी में घिसकर मुँहासों पर लगाने से चेहरों की खीलें मिट जाती हैं।

दिव्य औषधि गुडुच

भारत में गुडुच (गुरुच या गिलोय) को कौन नहीं जानता? गुडुच की बेल सर्वत्र दिखाई देती है। बहुवर्षायु, अमृततुल्य गुणकारी रसायन, दिव्य औषधि होने के कारण वह अमृता कहलाती है। वह सर्व रोगों से रक्षा करनेवाली है।

गुडुच के उपयोग

- ☐ दालचीनी-लौंग के साथ लेने से मुद्दती बुखार दूर होता है।
- ☐ गुडुच का रस पीने से मलेरिया तथा पुराना बुखार दूर होता है।
- ☐ सोंठ के साथ गुडुच का उकाला पीने से पीलिया तथा संधिवायु दूर होता है।

- ☐ घी के साथ प्रयोग करने से वायु के दर्द दूर होते हैं। शक्कर के साथ प्रयोग करने से पित्त के रोग दूर होते हैं। शहद के साथ प्रयोग करने से कफ के रोग दूर होते हैं।
- ☐ बुखार के बाद रहनेवाली कमजोरी में गुडुच का रस पौष्टिक एवं शक्ति-प्रदायक है।
- ☐ गुडुच का प्रयोग क्षय, कमजोरी तथा रसायन कर्म में लाभकर्ता है।
- ☐ लम्बे समय तक लेते रहने से कायमी कब्जी के दर्दी को लाभ होता है।
- ☐ गुडुच का चूर्ण शहद के साथ इस्तेमाल करने से हृदयरोगवाले को फायदा होता है।
- ☐ गुडुच का सदा उपयोग करने से डायब्टीजवाले को लाभ होता है। हररोज इंजेक्शन तथा टिकड़ियों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उनके कुप्रभावों से दर्दी बच जाएगा।
- ☐ माता को गुडुच देने से दूध बढ़ता है और माता के दूध के दोष दूर होते हैं। माता के दोषित दूध के कारण होनेवाले रोगों से बालक बच जाता है।
- ☐ अमुक समयावधि में गुडुच का उपयोग चालू रखने से युवावस्था बनी रहती है।
- ☐ सिद्ध योगी गोरखनाथ कहते हैं : कुण्डलिनी जागरण के समय शरीर में गर्मी महसूस हो तो गुडुच का रस शहद के साथ ठीक प्रकार मिश्रित करके तृप्तिपूर्वक लिया जाय तो मणिपुर चक्र, नाभिचक्र का शोधन सरलता से हो जाता है।

सावन में दूध का उपयोग नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से दही खाना चाहिए। भादों में दूध का विशेष प्रयोग करना चाहिए। स्वास्थ्य के लिए यह विशेष लाभदायक है।

(पेज नं. ६ से चालू ...)

फिर भी मैं कृतघ्न न कहलाऊँ अतः दोनों हाथ और यह सिर आपके चरणों में समर्पित कर प्रार्थना करता हूँ कि पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और मन से जो भी कुछ मुझसे हो सकता हो उससे मैं अपने गुरुदेव को संतुष्ट करता रहूँ। मेरे पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और मन से ऐसी चेष्टाएँ नित्य होती रहें कि उससे गुरुदेव का नाम रोशन होता रहे। मेरे गुरु का चित्त मुझ पर प्रसन्न हो, उनका ज्ञान मेरे द्वारा भी प्रकाशित होता रहे।"

शिष्य के शुभ संकल्प गुरु के शुभ संकल्पों के परिपोषक होते हैं। गुरु उन्हें ही कहा जाता है जो हमारे अज्ञान को निवृत्त करके आत्मज्ञान के दिव्य प्रकाश से हमारा पथ-प्रदर्शन करते हुए हमें परम तत्त्व तक पहुँचाने का शुभ संकल्प जगाते हुए समाज को भी उन्नति की दिशा दें। समाज को श्रेयस् और प्रेयस्, आवश्यकता और प्रकाश, सामर्थ्य और शक्ति देने की जिनमें सामर्थ्य है वे व्यक्ति मोक्षदाता और समाजोद्धारक होते हैं। समाज की सच्ची उन्नति और समुद्धार उन्हीं महापुरुषों के द्वारा होती है। शेष जो होते हैं, बम बनाने की विद्या सिखाते हैं, जमीं और जर-जायदाद की विधि बताते हैं और नित्य नश्वर कुर्सियों की रक्षा करने के हथकंडे बताते हैं, जबकि सद्गुरु शाश्वत आत्मपद पर बिठाने की ही सुचेष्टा में प्रवृत्त रहते हैं।

"अपना श्रेयस् और प्रेयस् चाहनेवाले, अपनी आवश्यकता को ठीक-ठीक समझनेवाले जो भी लोग ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के शरण में इस पवित्र पूर्णिमा के दिन आयेंगे वे वर्षभर के पुण्य पर्व के सद्फल के पुण्यभागी बनेंगे।"

हिलनेवाली, मिटनेवाली कुर्सियों के लिए छटपटाना एक बात है जबकि परमात्म-प्राप्ति के लिए छटपटाकर अचल आत्मदेव में स्थित होना निराली ही बात है। यह बुद्धिमानों का काम है।

जन्म-महोत्सव (चैत्र वद ६) के बाद गुरुपूर्णिमा तक का समय पू. बापू का एकान्तवास का समय है। इन दिनों में वे हिमालय में एकान्त, दुर्गम एवं अज्ञात स्थानों में रहते हैं। इस बार हिमालय के एकान्तवास से पहले, जन -जन में सोये हुए आतमराम को जगाने के यज्ञकार्य में सतत संलग्न, पूर्ण स्वतंत्र परम उपकारी पूज्य बापू का सत्संग समारोह साबरकांठा जिल्ले के नवा रेवास गाँव में तथा राजस्थान की राजधानी जयपुर में आयोजित हुआ।

१८ से २१ अप्रैल ९१

चार दिन के लिए नवा रेवास में सत्संग समारोह रहा। गाँव तो दो हजार की जनसंख्यावाला है लेकिन आसपास के गाँवों में से जनता उमड़ पड़ी तो पच्चीस हजार से भी अधिक भक्तजनों और साधकों ने सत्संग का लाभ लिया। नवा रेवास के लिए तो यह कार्यक्रम 'न भूतो न भविष्यति' जैसा भव्य बन गया।

२८ अप्रैल से २ मई

पाँच दिन के लिए जयपुर के गोविन्ददेव मँदिर, जयनिवास उद्यान में दिव्य सत्संग समारोह हुआ। जयपुर में आज तक किये गये धार्मिक सम्मेलनों में यह सबसे बड़ा सत्संग समारोह था। हृदय को प्रेम और प्रज्ञा के बल से वशीभूत करनेवाली_ आत्मा के आनन्द को छलकानेवाली पावन वाणी सुनने के लिए इतने भाविक लोग उमड़ पड़े थे कि जयनिवास उद्यान में लगाया हुआ मंडप छोटा पड़ गया। आसपास के बगीचे तथा मार्गों में खड़े रहने की भी जगह नहीं रही।

सत्संग समारोह में शहर के प्रतिष्ठित नागरिक, हाईकोर्ट के जज, विभिन्न धर्म और संप्रदाय के लोग भी इन अगम निगम के ओलिया, अनूठे महापुरुष की अमृतवर्षी वाणी सुनने के लिए उमड़ पड़े थे। २ मई के दिन सत्संग समारोह की पूर्णाहुति हुई। ३ मई को सुबह में पू. बापू एकान्तवास हेतु हिमालय की ओर प्रस्थान कर गये।

बड़ौदा में योग वेदान्त सेवा समिति ने दिनांक २६ से २८ अप्रैल तक एक विद्यार्थी ध्यान योग तालीम शिबिर का आयोजन किया। यद्यपि इन दिनों में बड़ौदा के भीतरी भागों में कौमी हुल्लड़ एवं करफ्यू का दौरा चल रहा था। फिर भी गोत्री की गायत्री हाईस्कूल में यह ध्यान योग शिविर बिल्कुल शान्तिपूर्ण रही। विद्यार्थी भाई-बहनों के जीवन का सर्वांगीण विकास हो ऐसे ध्यान, सत्संग, कीर्तन, योगासन, प्राणायाम तथा निबंध-लेखन, गायन, साखी कंठस्थ करना, योगासन आदि स्पर्धाओं का आयोजन हुआ। विजेताओं को पुरस्कार दिये गये। विद्यार्थी भाई-बहनों ने आनन्द-उल्हास की अनुभूति की और तेजस्वी जीवन जीने के लिए चाय, कोफी, सिनेमा आदि का त्याग, नियमित वाचन, सात्त्विक आहार आदि के लिए प्रतिज्ञाएं ली। बड़ौदा में बार-बार ऐसी शिविरें होती रहें ऐसी माँग की।

पू. बापू के सत्संग कार्यक्रमों में हजारों हजारों दिलों को शान्ति और तृप्ति मिलती है। पू. बापू का प्रत्यक्ष सानिध्य न हो ऐसे आडिओ-विडियो कैसेट के द्वारा सत्संग तथा पू. बापू के साधक-साधिकाओं के द्वारा होने वाले सत्संग कार्यक्रमों का लाभ भी जनता उत्साहपूर्वक लेती है।

पू. बापू की शिष्या पद्माबहन के सत्संग कार्यक्रम मेहसाना जिल्ले के महेरवाड़ा गाँव में, कच्छ जिल्ले के आदिपुर, गांधीधाम, धुणई आदि शहरों और गाँवों में रखे गये। महेरवाड़ा में दिनांक ३०-४-९१ से २-५-९१ तक लोग सत्संग, प्रभातफेरी एवं हरिकीर्तन में तरबतर हुए। आसपास के गाँवों में से लेग ट्रेक्टर, जीपगाड़ी या अन्य साधनों के द्वारा आकर सत्संग का लाभ लेते रहे।

दिनांक ५ से १० मई तक कच्छ के आदिपुर और

गांधीधाम में सत्संग कार्यक्रम हुए। पाकिस्तान से आये हुए सिंधी हिजरती जनता ने सत्संग-पान करके अखूट धैर्य, हिम्मत और शान्ति का अनुभव किया। घर-घर में पू. बापू की कैसेट एवं 'हरि हरि ॐ......' की धून गूंज उठी। सत्संग से प्रभावित होकर कई लोगों ने मांस और शराब का त्याग करने के लिए प्रतिज्ञा ली। सत्संगी भाइयों के द्वारा साहित्य वितरण की योजना भी अमली बनाई गई।

छाछ-केन्द्र

हिम्मतनगर तहसील के आदिवासी इलाके के कोटड़ा-गढ़ी गाँव में तथा हंगेरिया, सेबलिया, लांबड़िया, पिपलसरी, कसनपुरा, काला खेतरा तथा वींछी गाँव में गर्मी की मौसम में निःशुल्क छाछ वितरण केन्द्र चालू रहे हैं। हररोज चार हजार आदिवासियों को छाछ दी जा रही है। तदुपरान्त रात्रि के समय पू. बापू की विडियो कैसेट द्वारा सत्संग और प्रसाद वितरण का लाभ भी उन पछात लोगों को मिल रहा है। सत्संग के अलावा भजन मण्डलियाँ रामधून की जमावट भी करती हैं।

पू. बापू इन्दौर में

हरिद्वार, ऋषिकेश, हिमालय से लौटकर पू. बापू इन्दौर आश्रम में पधारे... एकान्त वातावरण, बिलावली तालाब के किनारे, शान्त, सुरम्य आश्रम में अज्ञातवास हेतु रहे किन्तु सूरज भला कितना अज्ञात रह सकता है! दिन भर दर्शनार्थियों का लगातार आगमन ध्यान में लेकर पू. बापू ने हररोज शाम को सन्ध्या के समय एक घण्टा मुलाकात के लिए दिया। अमृत से भला कौन तृप्त हो सकता है! भक्तों ने आग्रह किया और हररोज शाम को ४-३० से ६-३० तक कीर्तन, ध्यान, सत्संग होता रहा। पूज्यश्री की अनुभव-सम्पन्न भगवद्वाणी सुनकर इन्दौर तथा आसपास से उमड़ी हुई जनता ने अपनी आध्यात्मिक पिपासा का परिचय दिया। पू. बापू ने प्रसन्न होकर रविवार के दिन सुबह और शाम दो बार सत्संग का लाभ दिया। आखिरी दिन पू. बापू के मार्गदर्शन में जीवन को साधनामय बनाने के इच्छुक भक्तों के लिए योगदीक्षा समारोह भी हुआ।

इन्दौर में दिव्य सत्संग समारोह

इन्दौर की जनता बड़ी भाग्यवान है! गुरुपूर्णिमा से पूर्व ही उसने हिमालय के एकान्त अज्ञातवास से पधारे हुए पू. बापू से केवल सत्संग ही नहीं, योगदीक्षा भी पा ली।

*

पू. बापू के आगामी कार्यक्रम

कोटा में दिव्य सत्संग समारोह

कोटा (राजस्थान) तथा कोटा के आसपास के देहातों में पूज्यपाद स्वामीजी का सत्संग, ध्यान, कीर्तन और

सनातन धर्म के पवित्र शास्त्रों का प्रसाद पहुँचे इस पवित्र उद्देश्य से कोटा के सज्जनों ने पीछले तीन साल से अथक प्रयास किये। उनके इस तीन वर्षीय अथक पुरुषार्थ का साकार फल स्वरूप माने कोटा में पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज का दिव्य सत्संग समारोह दिनांक : ७ से १० जुलई ९१. सुबह ८ से १०. शाम ४ से ६. स्थान : मल्टी परपझ स्कूल, गुमानपुरा, कोटा।

आठ प्रकार के दान शास्त्रों में सुप्रसिद्ध हैं : अन्नदान, भूमिदान, गौदान, गोरसदान, कन्यादान, सुवर्णदान, अभयदान और आत्मज्ञान-दान। भक्ति और आत्मज्ञान देने और दिलानें में प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग देनेवाले ऐसे दाता

इन्दौर में दिव्य सत्संग समारोह

अपना तो कल्याण करते ही हैं, अपने कुल का भी उद्धार करते हैं।

ईश्वर और महापुरुष के दैवी कार्यों में जो साझीदार होते हैं वे ईश्वर और संत-महापुरुष के दैवी अनुभव के साझीदार हो ही जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए शास्त्रों में ठीक ही कहा है :

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था ।
वसुन्धरा पुण्यवती च येन ॥

*

मांडल में दिव्य सत्संग समारोह

कोटा के बाद मांडल (राज.) के भक्तों ने पू. बापू का सत्संग-लाभ प्राप्त करने का सौभाग्य पा लिया है। दिनांक १२, १३, १४ जुलई ९१ के दौरान हररोज सुबह ९ से ११, शाम ४ से ६ खेलकूद मैदान, बस स्टेन्ड के पास, मांडल, जि. भीलवाड़ा, राजस्थान।

गुरुपूर्णिमा महोत्सव

हर साल की भाँति इस बार भी आषाढ़ी पूर्णिमा, व्यासपूर्णिमा या गुरुपूर्णिमा का महोत्सव दिनांक २६ जुलई ९१ के दिन संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद - ३८० ००५ (फोन : ४८६३१०, ४८६७०२) में मनाया जाएगा।

आत्मीय गुरुबन्धुओं.... योगयात्रा के सहयात्रियों..... विशाल साधक परिवार के भाई-बहनों... सुज्ञ वाचकगण !

'ऋषि प्रसाद' के इस प्रथम अंक का पठन-अवलोकन आप कर रहे हैं। अंक आपको कैसा लगा? आपके प्रतिभाव जानने के लिये हम उत्सुक हैं। आपके अमूल्य सूचन हमें आगामी अंकों के प्रकाशन में उपयोगी होंगे। पत्र रूपी पंखों से उड़कर हमें आभारी करेंगे न? धन्यवाद .... (तंत्री)

(टाइटल पेज नं. २ से चालू)

श्रीराम जानते थे कि आध्यात्मिक विद्या का क्या महत्त्व है। श्रीकृष्ण भी गुरु सांदीपनि की सेवा में रहे थे। गुरुभाइयों के साथ जंगल में लकड़ियाँ काटने जाते थे। विद्याध्ययन समाप्त होने पर गुरु के चरणों में प्रार्थना की :

"गुरुदेव ! आज्ञा करो। श्रीचरणों में क्या गुरुदक्षिणा दूं? क्या सेवा करुं?"

गुरुदेव बोले : "मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं है।"

"गुरुदेव ! आपको तो कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन मुझे सेवा करने की आवश्यकता है। मेरा कर्त्तव्य है।"

"अच्छा, तो अपनी माँ से पूछ। उसे क्या चाहिए?"

श्रीकृष्ण ने गुरुपत्नी से पूछा : "माँ ! मैं आपकी क्या सेवा करुँ?"

गुरुपत्नी ने कहा :"कृष्ण ! तू हमारा सबसे समर्थ विद्यार्थी है। मेरा बेटा यमलोक चला गया है वह मुझे ला दे।"

श्रीकृष्ण ने नियति की मर्यादा को तोड़कर यमपुरी से गुरुपुत्र को लाकर माँ की गोद में रख दिया।

गीता युद्ध के मैदान में कही गई है। बड़ा कटोकटी का समय था। कुछ भी अनावश्यक बात करने का समय नहीं था। पूरी गीता में एक भी शब्द अधिक नहीं मिलेगा। भगवान ने जो कहा है वह बिल्कुल संक्षेप में और सार रूप है। दोनों सेनाओं के बीच रथ खड़ा है ऐसे मौके पर भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्त्व को भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

(गीता : ४.३४)

जो श्रीकृष्ण के सांनिध्य में रहता है उस अर्जुन को भी श्रीकृष्ण ज्ञानियों से आत्मज्ञान पाने की सलाह दे रहे हैं। इससे आत्मज्ञान की महिमा का पता चलता है।

यह आत्मज्ञान मनुष्य मनुष्य के बीच की दूरी मिटाता है, भय और शोक, ईर्ष्या और उद्वेग की आग से तपे हुए समाज को सुख और शांति, स्नेह और सहानुभूति, सदाचार और संयम, साहस और उत्साह, शौर्य और क्षमा जैसे दिव्य गुण देते हुए हृदय के अज्ञान-अन्धकार को मिटाकर जीव को ब्रह्म बना देता है।

जिस-जिस व्यक्ति ने, समाज ने, राष्ट्र ने तत्त्वज्ञान की उपेक्षा की, तत्त्वज्ञान से विपरीत आचरण किया उसका विनाश हुआ, पतन हुआ। घूस, पलायनवाद, आतंकवाद और कायरता जैसे दुर्गुण समाज में फैले। शास्त्रों ने कहा है :

आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते ।

आत्मलाभ से परम लाभ कोई नहीं।

मन्द और म्लान जगत को तेजस्वी और कांतिमान आत्मसंयम और आत्मज्ञान से ही किया जा सकता है।

*

Registered with the Registrar of Newspaper for India Under No.

पू. स्वामीजी की, प्रेम और प्रज्ञा के बल से हृदय को वशीभूत करनेवाली पावन वाणी सुनकर मंत्रमुग्ध बनी हुई जयपुर की जनता.....

समाज की शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए निःस्वार्थ भाव से संतों का प्रसाद बाँटने में जो साझीदार होते हैं वे धनभागी हैं। वे आप तो तरते हैं, औरों को तारने का पुण्य-पुंज भी प्राप्त करते हैं।

दिल्ली में पू. स्वामीजी का एक ही बार सत्संग हुआ था। वहाँ के भाग्यवान लोगों ने सत्संग पर आधारित पुस्तकें और कैसेटें जन-जन तक पहुँचाने का पावन कार्य शुरु किया। श्री योग वेदान्त सेवा समिति का सूत्र 'सबका भला' लिखित गाड़ी उस सत्साहित्य के प्रचार में लगाई गई। चित्र में गाड़ी के मंगल उद्घाटन का दृश्य दिख रहा है।